सूची पत्र ।

उपक्रम ।

इतिहासप्रसिद्ध सती, पतिव्रता, शूरवीर और धर्म्मशीला स्त्रियों के जीवन-चरित्रों की पुस्तकों के पढ़ने से कुल-बालाओं का विशेष उपकार हो सकता है । इस हेतु हमने ऐसी पुस्तकों के छापने का विचार किया है और आज हम यह ' भारत-महिला-मण्डल ' प्रथम खण्ड प्रकाशित करते हैं । इस में ऐसी २ सती, पतिव्रता और शूर वीर स्त्रियों के जीवन-वृत्तान्त लिखे गये हैं कि जिनके कारण आज तक क्षत्रिय वंश गौरवान्वित हैं । इन प्रातःस्मरणीया महिलाओं के ऐतिहासिक वृत्तान्त पढ़ने से स्त्रियों के हृदय पर उत्तम प्रभाव होगा और मनोरंजन के साथ २ पातिव्रत धर्म्म और कर्त्तव्यपालन की शिक्षा मिलेगी ।

जब तक भारतवर्ष की स्त्रियों के उत्तम विचार और उच्च चरित्र न होंगे भारत-सन्तान के यथोचित सुधार की आशा नहीं है और स्त्रियों के आचार विचार का सुधार उत्तम शिक्षाओं की पुस्तकों के साथ २ शुभ गुणसम्पन्न आदर्शरूप स्त्रियों के जीवन-वृत्तान्तों की पुस्तकों के पढ़ने से ही सकता है इसलिये पुरुषों को चाहिये कि अपनी कन्याओं और स्त्रियों को ऐसी २ पुस्तकों के पढ़ाने का प्रबन्ध करें ।

यद्यपि इस पुस्तक में छपे किसी २ वीर महिला के वृत्तान्त अन्य २ पुस्तकों में भी हमारे पाठकों ने पढ़े होंगे परन्तु हम ने इस पुस्तक में समस्त जीवन-वृत्तान्त कई एक भाषाओं की पुस्तकों और लेखों से मिलान करके और भली भांति जांच कर लिखे हैं और भाषा व भाव की उत्तमता पर भी विशेष ध्यान दिया है ।

दिसम्बर १९०६ ग्रन्थकार

द्वितीय संस्करण विषयक निवेदन ।

हर्ष का विषय है कि भारत महिला-मंडल (प्रथम खंड) के द्वितीय मुद्रण-संस्कार का भी अवसर प्राप्त हुआ। जितनी हमें आशा थी उस से अधिक इस का आदर आर्य्य महिलाओं व पुरुषों में हुआ । टैक्स्ट बुक-कमेटी संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध ने लड़कियों के पारितोषिक के लिये और मध्य प्रदेश के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर साहब ने लड़कों व लड़कियों के पारितोषिक के लिये इसको पसन्द कर इसका और भी गौरव बढ़ाया है ।

इस प्रथम खण्ड के अधिक प्रचार से उत्साहित होकर इसका द्वितीय खण्ड शीघ्र हमने प्रकाशित किया तथा अन्य २ जीवन-चरित्र विषयक पुस्तकें हिन्दी भाषा में प्रकाशित कीं और आनन्द की बात है कि उन सब का यथेष्ट प्रचार हो रहा है ।

आगरा

३१ दिसम्बर १९०९ ई०

हनुमन्तसिंह

भारत-महिला-मंडल।

संयोगता या संयुक्ता।

राजकुमारी संयोगता कन्नौज के महाराज जयचन्द की
ी परम रूपवती और गुणवती थीं। उस समय कन्नौज का
ज्य बहुत बढ़ा हुआ था परन्तु जब महाराज पृथ्वीराज
हान को, जो राजा जयचन्द के मौसेरे भाई थे, अपने अजमेर
पैतृक राज्य के सिवाय अपने नाना अनंगपाल तंवर का
ल्ली का भी राज्य मिल गया तो इनका राज्य वैभव
ी जयचन्द के समान हो गया। इस से जयचन्द के हृदय
द्वेषभाव उत्पन्न हुआ। फिर जब पृथ्वीराज ने अश्वमेध
ज्ञ किया तो और भी अधिक ईर्ष्या द्वेष बढ़ा इसलिये
धिक महत्व प्राप्त करने की इच्छा से जयचन्द ने अब राजसूय
ज्ञ करने की तैयारी की। इस राजसूय यज्ञ में महाराज
पृथ्वीराज और रावल समरसी के सिवाय भारतवर्ष भर
े सब राजा उपस्थित हुए थे। जयचन्द ने उनको अन्य
राजाओं के सन्मुख अपमानित करने के लिये उनकी सुवर्ण
मूर्त्ति बनवा कर एक को ड्योढ़ी पर और दूसरी को जूठे
र्तन मांजने के स्थान पर खड़ा करा दिया। यज्ञ के पीछे जय-
चन्द ने राजकुमारी संयोगता का स्वयम्वर करने का विचार
किया था। पृथ्वीराज ने जब यह बात सुनी तो यज्ञ को नष्ट
करने और राजकुमारी को बलात् ले जाने की प्रतिज्ञा की।

संयोगता ने जब से पृथ्वीराज की वीरता, साहस
और पराक्रम की प्रशंसा सुनी थी तब से उन्होंने चित्त में
इन्हीं से विवाह करने का दृढ़ निश्चय किया था। उन्होंने
समझ लिया था कि मेरे पति होने के योग्य यही यशस्वी

महाराज हैं। जब राजकुमारी जयमाल लेकर राजसभा में आईं तो अपने पिता की प्रसन्नता या अप्रसन्नता का कुछ विचार न करके सब सभा के सामने होकर आगे को बढ़ती चली गईं और पृथ्वीराज की मूर्त्ति के गले में जयमाल डालदी। पृथ्वीराज एक दिन अचानक चुने हुए सैनिक सवारों और सर्दारों को साथ लेकर कन्नौज के महलों से संयोगता को बलात् दिन दहाड़े ले चले। ५ दिन तक बराबर कन्नौज से दिल्ली तक रास्ते में घोर युद्ध होता गया। पृथ्वीराज दिल्ली को चलेजाते थे और कन्नौज की सेना इनका पीछा करती जाती थी। पृथ्वीराज ने राजकुमारी को नहीं छोड़ा और अपनी शूरवीरता का पूर्ण परिचय दिया परन्तु दिल्ली का बल नष्ट कर दिया और राजा जयचन्द ने भी कन्नौज को शक्तिहीन कर दिया। इसी स्वयम्वर के पश्चात् दिल्ली और कन्नौज के राजाओं की शत्रुता इतनी बढ़ी कि दोनों का राज्य ऐश्वर्य्य अन्त में नष्ट हो गया और आर्य्यों का स्वतन्त्रता सूर्य्य अस्त होगया। पृथ्वीराज के बहुत पराक्रमी सुभट और शूरवीर सामन्त इस संग्राम में काम आये परन्तु वह कुशल पूर्वक संयुक्ता को दिल्ली में ले गये। पुरातत्त्ववेत्ता जर्नल कनिंगहम साहब लिखते हैं कि यह संग्राम सन् ११७५ में हुआ है अन्यथा इनका पुत्र रायनसी, जो मुसल्मानों से लड़कर मारा गया, शस्त्र बांधने योग्य न होता।

जब से कि पृथ्वीराज संयुक्ता को लेकर दिल्ली आये तब से उन्हें राजकाज का कुछ ध्यान न रहा। दिन रात अपनी इस नवोढ़ा रानी के संग विषय-विलास में निरत रहने लगे। इस प्रकार बहुत समय आनन्द विलास में व्य-

तीत हो चुका तो राजदूतों ने आकर समाचार दिया कि "महाराज यवनों की सेना चली आती है।" यह समाचार सुन कर महारानी उपदेश करने लगीं,-" हे प्रियतम। अब यह समय भोग विलास का नहीं है, आप क्षत्रिय हैं अस्त्र शस्त्र संभालिये, संग्राम की तैयारी कीजिये, क्षत्रिय के लिये अपने वंश, देश और मानमर्य्यादा के लिये प्राण दे डालना मृत्यु नहीं कहाती वरन् संसार में सुयश प्राप्त करके अमर होना है। संसार में क्षत्रिय पुरुष के लिये कीर्त्ति और परलोक का विचार सर्वोपरि है। यदि रण-भूमि में आप शरीर भी त्याग कर देंगे तो मैं भी आपके साथ स्वर्ग चलूंगी, अब आप युद्ध के लिये सन्नद्ध हूजिये और शत्रुओं का संहार कीजिये।" यह सेना शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी की थी। पृथ्वीराज रासो के लेखानुसार वह ७ बार पृथ्वीराज से हार चुका था। अब ८ वीं बार दो वर्ष तक सेना संभाल और तबक़ात नासरी के लेखानुसार १२०००० सेना साथ लेकर बदला लेने फिर हिन्दुस्तान में आया था। मुसलमानों की सेना कॅगर नदी के तट पर उतरी। इधर पृथ्वीराज भी झटपट संग्राम की तैयारी कर युद्ध के लिये उद्यत होगये। अपने मेल के सब राजाओं को सहायता के लिये बुलाकर दिल्ली में सम्मति करने के लिये राजसभा की कि किस उपाय से शत्रु-सेना को पराजित करें। सब की यह सम्मति हुई कि आगे चल कर ही रण में शत्रुओं को पराक्रम दिखावें। युद्ध के लिये जाते समय पृथ्वीराज क्षत्रिय कुल की रीत्यनुसार अपनी माता, बहिन, और स्त्री से युद्ध के लिये विदा होने गये। क्षत्रियों में रीति है कि सब स्त्रियां अपने पुत्रों और पतियों को ऐसे समय में समझाती हैं कि देखना रण से न हटना। यदि युद्ध से पीछे हटे तो

इस संसार में मुख दिखाने योग्य न रहोगे। फिर जीना सं-
सार में कठिन हो जायगा। सब हमारी निन्दा करेंगे जिस
से मृत्यु ही भली है।

जब पृथ्वीराज अपनी प्यारी रानी संयुक्ता से मिलने
आये तो दोनों में बोलने की शक्ति न रही। रानी स्थिर
दृष्टि से राजा को देखती ही रह गईं। अपनी प्राणप्यारी
के हाथ से सुवर्ण के पात्र में जल पी कर के राजा सेना के
युद्ध-वाद्य का शब्द सुन कर चल दिये।

संयोगता सती थीं, उन्हें रणवाद्य का भयंकर शब्द सुनते
ही भास गया था कि इस युद्ध में मेरे प्राणनाथ की कुशल
नहीं है। उन्होंने धैर्य धारण कर पति को युद्ध के लिये विदा
किया और चलते समय कहा—" युद्ध में अच्छी तरह पराक्रम
दिखाइये। विजय प्राप्त होने पर यहां आनन्द से सम्मिलन
होगा नहीं तो स्वर्ग में, जाकर मिलूंगी ही।" फिर अपने
मन ही मन में कहा,— " हे योगिनीपुर (दिल्ली का यह
एक पुराना नाम है) मैं तुझ से जल्द ही विदा होऊंगी।
अब मैं अपने प्रियतम से स्वर्ग में जाकर मिलूंगी। यहां
अब उनका दर्शन कहां!" अन्त को वही बात हुई जिसको
वह पहले से समझी हुई थीं। मुसलमानों की जय हुई और
पृथ्वीराज शत्रुओं के हाथ में पड़ कर मारे गये। यह ख़बर
सुन कर रानी संयुक्ता तत्काल पति के संग सती होने को
तय्यार हुईं और सब के देखते ही देखते पति का सिर गोद
में लेकर जलती हुई अग्नि में बैठकर भस्म होगईं।

जिस दिन से उन्होंने पति के मारे जाने का समाचार
सुना उस दिन से सती होने के समय तक केवल उलना ही
जल पीकर जीवित रहीं जो राजा चलती समय जल्दी में

र्ण पात्र में पी कर छोड़ गये थे। कवि चन्द ने "पृथ्वी-ज रासो" का एक खण्ड इस पतिव्रता रानी के सती होने र शारीरिक कष्ट सहने के वर्णन में लिखा है।

"पृथ्वीराज रासो" में लिखा है कि पृथ्वीराज को हाबुद्दीन क़ैद करके ग़ज़नी को साथ ले गया था और हां पर पृथ्वीराज चन्द के संकेत पर शहाबुद्दीन को र कर पूर्व निश्चयानुसार चन्द और चौहान राजा क दूसरे के शस्त्र से मारे गये। जो हो, परन्तु संयोगता ती अवश्य हुईं।
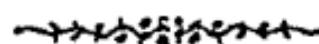
पद्मावती या पद्मिनी।

जिन सती, पतिव्रता और शूरवीर स्त्रियों के नाम जस्थान के इतिहास, दन्त-कथाओं और कविताओं में ाते हैं उनमें रानी पद्मावती अधिक प्रसिद्ध हैं। ये अपनी लौकिक सुन्दरता एवम् बुद्धि की तीव्रता और पातिव्रत र्म के कारण जगत्-विख्यात हैं। यह हमीरसिंह चौहान जा सिंहल द्वीप की पुत्री थीं। इनका जन्म १३ वीं ताब्दि में हुआ था। अत्यन्त रूपवती होने के कारण ी इनका नाम पद्मिनी रक्खा गया था। ये राणा खमसी या लक्ष्मणसिंह के चचा भीमसिंह को ब्याही ईं थीं। उस समय दिल्ली की बादशाहत अत्याचारी लाउद्दीन के हाथ में थी। उसने पद्मिनी के रूप की

प्रशंसा सुनते ही उनको अपने महल में लाने की इच्छा की। इससे उसने मेवाड़ के ऊपर चढ़ाई कर चित्तौड़ को घेर लिया, परन्तु जब वह राजपूतों पर विजय प्राप्त न कर सका तो अन्त में केवल शीशे में से पद्मिनी का मुख देख कर पीछे लौट जाना अंगीकार किया। भीमसेन ने भी अपने वीर पुरुषों के प्राण बचाने के लिये यह बात स्वीकार कर ली।

अलाउद्दीन को राजपूतों के वचन पर विश्वास था इससे थोड़े मनुष्यों के साथ उसने चित्तौड़ में प्रवेश किया और जो बात निश्चित हुई थी तदनुसार पद्मिनी का मुख दिखा देने से उसने राजपूतों को धन्यवाद दिया परन्तु अलाउद्दीन मुख से कहता कुछ था और मन में विचार कुछ रखता था। परम सुन्दरी पद्मिनी का मुख देखा तभी से उस की विकलता और बढ़ गई। भीमसिंह और थोड़े से राजपूत अलाउद्दीन के साथ में बातें करते हुए गढ़ से नीचे उतर आये परन्तु बादशाह के मन में पाप था, बातों ही बातों में राजपूतों को अपने शिविर तक ले गया और अवसर पाकर भीमसिंह को क़ैद कर लिया और वहां से कहला भेजा कि पद्मिनी लिये बिना भीमसिंह को नहीं छोड़ूंगा। विश्वासीस्वभाव राजपूतों ने कपटी शत्रुओं को आत्मवत् सरलहृदय समझा जिससे उनका यह अनिष्ट हुआ। इस शोक समाचार के सुनते ही चित्तौड़ में घबड़ाहट फैल गई। अब क्या करना चाहिये सो कुछ उन्हें उस समय सूझता न था।

अन्त में जब यह सब बात पद्मिनी ने सुनी तो अपने काका गोरा और गोरा के भतीजे बादल को बुला कर पूछा कि क्या उपाय किया जाय जिससे

न्धनमुक्त हो जावें और मेरी प्रतिष्ठा में धब्बा न लगे । न्होंने ऐसी युक्ति बतलाई कि जिससे पद्मिनी की तिष्ठा और प्राण दोनों बचें । उन्होंने अलाउद्दीन से हलाया कि हम अपने राज्य के संरक्षण के बचाने के लिये द्मिनी दे देने को उद्यत हैं। पद्मिनी भी दिल्ली के बादशाह महलों में जाने को प्रसन्न हैं परन्तु पद्मिनी की प्रतिष्ठा ौर राजपूतों की रीति व्यवहार बिगड़ने न देने के लिये द्ध नियम स्वीकार करने पड़ेंगे । प्रथम तुम घेरेको उठाओ यही हम पद्मिनी को भेजेंगे। फिर पद्मिनी के साथ कुछ ासियां छावनी तक बिदा करने को जावेंगी और कितनी ी उनकी निज की दासियां हैं वे तो दिल्ली को उनके साथ ी जाना चाहती हैं । इससे उनको जाने की आज्ञा मिलनी ाहिये और उनकी मान प्रतिष्ठा भंग न होने देना चाहिये। ाजपूतों के यहां नियम है कि स्त्रियां किसी को मुख नहीं दिखातीं सो इसी प्रकार तुम्हारे यहां भी होना चाहिये । पद्मिनी के मुख देखने को तुम्हारे सर्दार लोग बड़े आतुर होंगे और वे उनका मुख देखने को आवेंगे सो उनका तो क्या किन्तु उनकी दासियों तक के भी मुख देखने की आज्ञा न होनी चाहिये । ये सब बातें स्वीकार हों तो तुम घेरा उठाने की आज्ञा देकर हमको जताना, तत्काल हम पद्मिनी को उनकी दासियों के साथ भेज देंगे । पद्मिनी पर मोहित हुआ अलाउद्दीन क्यों न ऐसे सुगम नियमों को स्वीकार करता ? उसे तो पद्मिनी लेनी थी चाहे जैसी कठिन बातें भी स्वीकार कर लेता । अलाउद्दीन जैसे छली कपटी मनुष्य के लिये जैसे चाहिये वैसे ही गोरा और बादल भी मिले । अलाउद्दीन ने ये सब बातें स्वीकार करके घेरा उठाने की आज्ञा

दे दी । इतने में चित्तौड़ में से एक के पीछे एक इस प्रकार सात सौ पालकी निकलीं । उनमें से प्रत्येक में एक २ वीर पराक्रमी राजपूत शस्त्र सहित बिठला दिया गया था और उन पालकियों में से प्रत्येक के उठाने के लिये छै २ वीर शस्त्रधारी राजपूत पालकी उठाने वालों के वेश में थे। वे सब बादशाही शिविर के पास आये और एक तम्बू के भीतर जिस के चारों तरफ क़नात लगी थी, सब डोले उतारे गये । अलाउद्दीन ने भीमसिंह को आध घन्टे के लिये पद्मिनी से अन्तिम भेट कर लेने की इजाज़त दी । भीमसिंह तम्बू में गये तो उन को एक पालकी में बिठलाया गया और उन के साथ थोड़ी पालकी पीछे चलीं । मार्ग में शीघ्रगामी घोड़ा तैयार कर रक्खा था, उसपर चढ़ कर भीमसिंह चित्तौड़गढ़ में कुशल पूर्वक जा पहुंचे । इधर बादशाह अपने मन में बड़ा हर्षित था कि ऐसी अद्वितीय सुन्दरी मुझको मिल गई और कामातुर होकर प्रतीक्षा कर रहा था कि कब आध घंटा बीते और कब स्वर्गीय अप्सरा तुल्य पद्मावती से भेट हो । भीमसिंह बहुत देर तक पद्मिनी के साथ बातें करें यह भी उसे अच्छा न लगा, इससे वह तम्बू में आया परन्तु वहां भीमसिंह या पद्मिनी दोनों में से कोई भी उसे न मिले । पालकियों में से एकाएक सब वीर क्षत्रिय निकल पड़े । अलाउद्दीन भी कच्चा न था, उसके यवन योद्धे उसकी रक्षा के लिये तैयार थे । राजपूतों ने कपट किया यह देख उसने तुरन्त ही भीमसिंह के पीछे सैनिक भेजे परन्तु बादशाही छावनी से लौटे हुए राजपूतों ने उन को रोक लिया । एक २ मरने तक वीरता से लड़ा परन्तु बहुतों के आगे थोड़ों का क्या बस चल सकता था ? मुसलमानों

ने चित्तोड़ के द्वार के आगे राजपूतों को पकड़ पाया परन्तु भीमसिंह तो उनसे पहले ही ठिकाने पर पहुंच चुके थे। द्वार के आगे जो राजपूत थे उनके नायक गोरा और बादल थे। उन्होंने मुसल्मानों को ऐसा त्रास दिया कि अलाउद्दीन को अपनी इच्छा के पूर्ण होने में भी शंका हो गई, और उसे कुछ समय के लिये तो अपने ध्यान से पद्मिनी को दूर ही करना पड़ा। भीमसिंह के छुड़ाने में बहुत शूरवीर सीसोदिया मारे गये और बादल घायल हुआ तथा गोरा मारा गया। बादल की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी परन्तु उस ने अपनी वीरता से लोगों को चकित कर दिया।

चित्तौड़ से अलाउद्दीन पहली बार पीछे को हट गया परन्तु उसके हृदय से पद्मिनी लेने की बलवती इच्छा दूर न हुई थी इसलिये सन् १२९६ ई० में अपना प्रबल सैनिक दल इकट्ठा करके फिर वह चित्तौड़ पर चढ़ आया। पहले युद्ध में राजपूतों के बड़े २ शूर सामन्त मारे गये थे। वे अपनी कमी पूरी कर लेते इतना भी समय उनको अलाउद्दीन ने नहीं दिया तो भी क्षत्रिय लोग जितनी सेना जल्दी में इकट्ठी कर सके उतनी सेना से ही मुसल्मानों से लड़ने को उद्यत हुए।

छै मास तक युद्ध होता रहा, राजपूत बड़ी वीरता और धीरता से लड़ते रहे परन्तु अन्त में जब राजपूतों की संख्या क़िले में बहुत कम रह गई तो सब ने जौहर का विचार किया। एक बड़े मकान में चिता बनाई गई, और सब क्षत्राणियां, जिन की अग्रणी पद्मावती थीं, उस पर बैठ गईं तो उस में आग लगा दी गई, और गृह सहित भस्म होगईं। आग लगते ही चिता का धुंआ आकाश

में पहुंचा और उसका प्रकाश अलाउद्दीन की सेना में भी पहुंचा । अब राजपूतों ने केसरिया वस्त्र पहन, नंगी तलवारें हाथों में ले, सिंह की सी गर्जना कर द्वार खुला छोड़ "जय एकलिङ्ग जी की जय" कहते हुए मुसल्मानों पर धावा किया और अलौकिक वीरत्व प्रकाशित करते हुए मारे गये । भीमसिंह भी वीरता पूर्वक लड़कर मुसल्मानों के हाथ से मारे गये । अब चित्तौड़ में घुसने के लिये मुसल्मानों को कुछ रुकावट न रही । वे सुगमता से गढ़ में घुस गये परन्तु जिस पद्मिनी के लिये अलाउद्दीन ने अपने सहस्रों मनुष्यों के प्राण खोये, सहस्रों राजपूतों के प्राण नाश किये और जिसके समागम के लिये वेचैन हो रहा था वह अग्नि में जलकर भस्म होचुकी थी, इसलिये चित्तौड़ गढ़ में प्रविष्ट होने पर उसे असीम शोक हुआ और उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। क्रोध प्रकट करने को जब उसे कोई सजीव प्राणी चित्तौड़ में नहीं दीखा तो उसने क्रोधवश चित्तौड़ के महल और देवमंदिर तुड़वा डाले और इस तरह से वहां की प्राचीन कारीगरी के चिह्नों का नाश किया । अन्त में जब निर्जीव पदार्थ भी उसे नाश करने को न मिले तब वह पापी चित्तौड़ के खंडहरों का राज्य अपने एक अधिकारी को सौंपकर दिल्ली को चला गया ।

इस भीषण युद्ध और पद्मावती के भस्म होने की लोमहर्षण घटना का वर्णन पद्मावती काव्य में मलिक मुहम्मद जायसी ने वड़ी प्रभावोत्पादक रीति से किया है । देशभर की भिन्न २ भाषाओं के रागों और गीतों में भी इस रोमाञ्चकारिणी घटना का वर्णन वहुत उत्तम रीति से किया गया है। चित्तौड़गढ़ के जिस स्थान में पद्मावती भस्म हुई वह पवित्र

थान समझा जाता है। अब भी लोग चित्तौड़गढ़ में उस थान को देखने जाते हैं।

टाड्स राजस्थान में लिखा है कि चित्तौड़ का यह शाका राणा लखमसी के समय में हुआ, परन्तु कविराज श्यामलदास की सम्मति से जो इतिहास मेवाड़ के लिखे गये हैं उनमें लिखा है कि समरसी जी के बेटे रतसी जी के समय में यह शाका हुआ।

—❧—
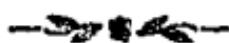
कृष्णा कुमारी।

यह राजकुमारी उदयपुर के महाराणा भीमसिंह की कन्या थी और अनहलवाड़ा के प्राचीन चावड़ा राजवंश की इसकी माता थी। यह राजकुमारी अपने मनोहर रूप लावण्य के कारण 'राजस्थान का कमल' कही जाती थी। कृष्णाकुमारी का विवाह सम्बन्ध जोधपुर के महाराजा भीमसिंह के साथ ठहरा था परन्तु ब्याह होने के पहिले ही उन का सन् १८०४ ई० में देहान्त हो गया तो जयपुर के महाराज जगतसिंह ने उस के विवाह के लिये संदेशा भेजा, परन्तु महाराज भीमसिंह के छोटे भाई और उत्तराधिकारी महाराजा मानसिंह ने कहला भेजा कि कृष्णाकुमारी के विवाह का सम्बन्ध इस राज्य के पहले रईस के साथ ठहर चुका है इस कारण अब उस का पाणिग्रहण हमारे साथ होना चाहिये। सेंधिया ने अपने प्राचीन द्वेषभाव के कारण जयपुर के राजदूतों को उदयपुर से निक-

लवा भी दिया। इस कारण जयपुर और जोधपुर के महाराजाओं में बड़ा द्वेष होगया। पहिले तो जयपुर वालों ने युद्ध में विजयी होकर प्रसिद्ध लुटेरे अमीर खां की सहायता से जोधपुर को जा घेरा और वहां वालों को बहुत तंग किया, पीछे जब राठौरों ने अमीरखां को लोभ देकर अपने पक्ष में कर लिया तो कछवाहों को अपनी जन्मभूमि को भागते बना और रुपया देकर पीछा छुड़ाया। इस प्रकार दोनों रियासतों से अपना प्रयोजन साध अमीरखां अपने पिंडारी लुटेरों के साथ उदयपुर आया और सारे राज्य में लूट मार आरम्भ कर दी। इधर दोनों महाराजा भी अपनी २ सेना लेकर उदयपुर आ पहुंचे और राजकुमारी के विवाह के लिये महाराणा जी को धमकाने लगे कि यदि कन्यादान हमें न दोगे तो हम तुम्हारा राज्य विध्वंश कर डालेंगे। महाराणा पद और कुल-गौरव में इन महाराजाओं से बड़े माने जाते थे और पहले राजपूताने भर में सब से अधिक शक्तिशाली भी थे परन्तु मुसलमानों से लड़ते २ और आपस की फूट के कारण अब बहुत निर्बल होचुके थे और इस समय इनमें इतनी शक्ति न थी कि इन की सेनाओं को रण में परास्त कर सकते इसलिये बड़ी द्विविधा में फँसे कि क्या करें। अमीरखां ने जो अत्यन्त कठोर-हृदय और निर्दय था राणा जी को अनुमति दी कि या तो कृष्णाकुमारी महाराजा मानसिंह को विवाहो या संहार करके रजवाड़ों की प्रचण्ड अग्नि को शान्त करो।

महाराणा जी को अपनी निर्दोष कन्या का बध किसी प्रकार स्वीकृत न था परन्तु अन्त को विवश हो कर महाराणा अपनी आत्मजा की प्राण-हत्या के लिये उद्यत

गये । अब इस भयंकर घोर पाप के करने के लिये
ई वधक नहीं मिलता था। महाराणा के समीपी स-
न्धी महाराज दौलत सिंह की ओर जब सब ने
केत करके कहा कि ये ही उदयपुर की प्रतिष्ठा रक्खेंगे
। ये क्रुद्ध होकर कहने लगे कि " धिक्कार है उस पुरुष
। जो मुझ से इस निर्दोष कन्या के वध करने के लिये कहे
र खाक पड़े उस नातेदारी पर जो इस अधम पाप
स्थिर रहे "। तब महाराणा का एक खवासज़ाद भाई
हाराज जीवनदास इस काम के लिये बुलाया गया और
सके समझा कर कहा गया कि अब उदयपुर की प्रतिष्ठा
चाने के लिये केवल एक यही उपाय रह गया है कि
ाजकुमारी का ही वध कर डाला जाय। किसी सामान्य
रुष से यह कार्य्य हो नहीं सकता। इस पर वह कृष्णा-
ुमारी को मारने के लिये उद्यत हो गया परन्तु जब वह
हल में पहुंचा जहां वह परम रूपवती नवयौवना राजकन्या
ठी हुई थी तो उसकी मनोहर भोली सूरत देखते ही खड्ग
सके हाथ से गिर पड़ा और वह पश्चात्ताप करता और
पनी दुष्टता पर लज्जित होता हुआ पीछे को लौटा।
रन्तु यह सब भेद कृष्णाकुमारी और उसकी माता पर
कट हो गया। माता मोहवश अपनी निर्दोष कन्या
े मारने वाले को कुवाच्य कहने लगी और विषम शोक
े विवेकशून्य होकर उच्च स्वर से रुदन करने लगी
रन्तु वीरकन्या अपने पिता, वंश और देश हित के
हेतु अपने प्राण त्याग को सहर्ष उद्यत हो गई। अब
कृपाण से मारने के बदले विष देने का विचार हुआ।
एक दासी ने रोते २ महाराणा की आज्ञा से विष का

प्याला लाकर कृष्णाकुमारी के हाथ में दिया । उस परम साहसी और धैर्य्यवती कन्या ने पिता की आयु और सम्पत्ति की वृद्धि के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते विष का प्याला पी लिया । मृत्यु के भय से उसकी आंखों से एक आंसू तक न आया । इस समय अभागिनी माता बड़ी दुःखिता होकर दुर्वचन कह रही थी परन्तु कृष्णा कुमारी उसे समझाती थी "हे प्यारी माता ! तुम क्यों इतना शोक करती हो ? क्या यह अच्छा नहीं कि हजारों को यु में कटवाने के बदले मैं इस प्रकार जन्म भर के लिये दुःखं से छुटकारा पाऊं ? मुझे मरने का किञ्चित भी भय नहीं है हे माता क्या मैं क्षत्रिय-कन्या नहीं हूं जो मृत्यु से भ करूं ? जन्मते ही हमारे प्राणान्त करने की तैयारी होने लगती है, संसार में आते देर नहीं होती कि हमें उस निकालने के विचार होने लगते हैं । पिता जी क अत्यन्त कृपा थी कि उन्हों ने मुझे इतनी अवस्था त जीता रहने दिया ।" इस प्रकार कृष्णाकुमारी अपन माता से बातें करती रही । जब मालूम हुआ कि पहल वार के विष पान से इसका प्राण नहीं निकला तो दूस प्याला विष का इसके हाथ में दिया गया । इस दृ प्रतिज्ञ कन्या ने वह भी पान कर लिया । जब उससे कुछ न हुआ तो तीसरी वार अति तीक्ष्ण विष दिया गया कृष्णा कुमारी ने मुसकराते हुए यह कह कर कि मे प्राण ऐसा निर्लज्ज हो गया कि वार वार विष पान क पर भी नहीं निकलता उसे पी लिया । इस वार वि पान करने पर अचेत होकर ऐसी सोई कि फिर व असार संसार में न जागी । जब कि उदयपुर की प्रजा

कृष्णाकुमारी की मृत्यु का समाचार फैला तो चारों ओर हाहाकार होने लगा। जो कोई इस राजकुमारी के साहस, रूप और मृत्यु का समाचार सुनता तो बड़ा खेद प्रकट करता। शत्रुओं तक को यह समाचार सुन कर शोक हुआ। अभागिनी माता भी पुत्री की मृत्यु के पश्चात् बहुत दिनों तक न जीवित रहीं। अपनी प्राणतुल्या पुत्री के वियोग में प्रति दिन रोते २ विक्षिप्त सी हो गईं और अन्त को अन्न जल छोड़ प्राण दे दिये।

संसार में बहुत धर्म्मशीला स्त्रियां हुई हैं परन्तु इतनी अल्पावस्था में ऐसे साहस और सद्गुण वाली नहीं देखी गई। धन्य है स्वर्गीया देवी कृष्णाकुमारी को कि १६ वर्ष की अवस्था में अपने पिता की मान-रक्षा और देश-रक्षा के लिये अपने प्राण देने को सहर्ष उद्यत हो गई और अन्त समय तक अपने पिता की कल्याण कामना करती हुई स्वर्ग सिधारी।

महाराजा जसवन्त सिंह की रानी।

यह महारानी उदयपुर की राजपुत्री थीं। इन्होंने अपने पति महाराजा यशवन्त सिंह के साथ, औरंगज़ेब और मुराद की सम्मिलित सेना से बड़ी वीरता से लड़ कर जोधपुर लौट आने पर, जो बर्ताव किया, उस से अनुमान किया जा सकता है कि पहली क्षत्राणियों के कैसे स्वभाव होते थे।

फ़्रान्सीसी यात्री वर्नियर ने अपनी 'भारतयात्रा' की पुस्तक में लिखा है ,—" इस अवसर पर यशवन्तसिंह की रानी ने, जो राणा के कुल की थीं, अपने स्वामी के साथ जो व्यवहार किया वह भी सुनने के योग्य है। जिस समय उन्हों ने सुना कि उन के पति आठ हज़ार में से पांच सौ योद्धाओं को लिये हुए अप्रतिष्ठा के साथ नहीं वरन् बड़ी वीरता से लड़कर युद्धक्षेत्र से चले आ रहे हैं तो उस समय उस शूर वीर योद्धा के निकट बधाई और आश्वासन का सम्वाद भेजना तो दूर रहा, उन्हों ने बड़ी निष्ठुरता से आज्ञा दी कि किले के सब फाटक बन्द कर दिये जांय। इस के पश्चात् उन्हों ने कहा—" मैं ऐसे निन्दित पुरुष को किले के भीतर नहीं आने दूंगी। ऐसा व्यक्ति और मेरा पति ! राणा का दामाद और ऐसा निर्लज्ज ! मैं कदापि ऐसे पुरुष का मुख नहीं देखना चाहती। ऐसे महान् पुरुष का सम्बन्धी होकर इस ने उसके गुणों का अनुकरण न किया। यदि यह लड़ाई में शत्रुओं को हरा नहीं सका तो यहां आने की क्या आवश्यकता थी वहीं युद्ध क्षेत्र में वीरता के साथ लड़ कर प्राण दे देना उचित था। " फिर तुरन्त ही उन के मन में दूसरा विचार उत्पन्न हुआ और उन्हों ने कहाः—" अरे कोई है जो मेरे लिये चिता तैयार कर दे ! मैं अपनी देह अग्नि को अर्पण करूंगी। सचमुच मुझे धोखा हुआ, मेरे पति वास्तव में संग्राम में मारे गये, इस के अतिरिक्त कोई दूसरी बात नहीं हो सकती। " फिर कुछ सावधान होने पर क्रोध में आकर बहुत बुरा भला कहती रहीं। ८—९ दिन तक उनकी यही दशा रही, इस बीच में महाराज

फ्रान्सीसी यात्री वर्नियर ने अपनी 'भारतयात्रा' की पुस्तक में लिखा है,—"इस अवसर पर यशवन्तसिंह की रानी ने, जो राणा के कुल की थीं, अपने स्वामी के साथ जो व्यवहार किया वह भी सुनने के योग्य है। जिस समय उन्हों ने सुना कि उन के पति आठ हज़ार में से पांच सौ योद्धाओं को लिये हुए अप्रतिष्ठा के साथ नहीं वरन् बड़ी वीरता से लड़कर युद्धक्षेत्र से चले आ रहे हैं तो उस समय उस शूर वीर योद्धा के निकट बधाई और आश्वासन का सम्वाद भेजना तो दूर रहा, उन्हों ने बड़ी निष्ठुरता से आज्ञा दी कि किले के सब फाटक बन्द कर दिये जांय। इस के पश्चात् उन्हों ने कहा—"मैं ऐसे निन्दित पुरुष को किले के भीतर नहीं आने दूंगी। ऐसा व्यक्ति और मेरा पति! राणा का दामाद और ऐसा निर्लज्ज! मैं कदापि ऐसे पुरुष का मुख नहीं देखना चाहती। ऐसे महान् पुरुष का सम्बन्धी होकर इस ने उसके गुणों का अनुकरण न किया। यदि यह लड़ाई में शत्रुओं को हरा नहीं सका तो यहां आने की क्या आवश्यकता थी? वहीं युद्ध क्षेत्र में वीरता के साथ लड़ कर प्राण दे देना उचित था।" फिर तुरन्त ही उन के मन में दूसरा विचार उत्पन्न हुआ और उन्हों ने कहाः—"अरे कोई है जो मेरे लिये चिता तैयार कर दे! मैं अपनी देह अग्नि को अर्पण करूंगी। सचमुच मुझे धोखा हुआ, मेरे पति वास्तव में संग्राम में मारे गये, इस के अतिरिक्त कोई दूसरी बात नहीं हो सकती।" फिर कुछ सावधान होने पर क्रोध में आकर बहुत बुरा भला कहती रहीं। ८-९ दिन तक उनकी यही दशा रही, इस बीच में महाराज

शवन्तसिंह से यह एक बार भी नहीं मिलीं। अन्त में जब
न की मा उनके पास आई और उन्हों ने समझाया
क घबराओ नहीं, राजा कुछ विश्राम लेकर और नई सेना
कत्रित करके पुनः औरंगजेब पर आक्रमण करेंगे और
पनी वीरता व पराक्रम का फिर परिचय देंगे तब वह
छ शान्त हुई।

बर्नियर लिखता है कि "इस से यह प्रकट होता है कि
स देश की स्त्रियों को अपने नाम, और प्रतिष्ठा और कुल-
ौरव का कितना ध्यान है और उनका हृदय कैसा सजीव
। मैं ऐसे और भी दृष्टान्त दे सकता हूं क्योंकि मैंने बहुत
ी स्त्रियों को अपने पतियों के साथ चिता में जलकर मरते
अपनी आंखों से देखा है। परन्तु ये बातें मैं किसी दूसरे
अवसर पर (आगे चलकर) वर्णन करूंगा, जहां मैं दिखाऊंगा
के मनुष्य के चित्त पर आशा, विश्वास, प्राचीन रीति
रीति, धर्म और सम्मान के विचार का कितना दृढ़
प्रभाव पड़ता है।"

पाठक! यह केवल वीरभाव था कि जिसने रानी को
अपने प्राण-तुल्य प्रियतम को कठोर शब्द कहने को विवश
किया। इस वृत्तान्त से पाठक समझ सकते हैं कि राजपूत
स्त्रियां कैसी शूर वीर और उच्च विचार की होती रही हैं।

कर्म्मदेवी।

यह शूर वीर और तेजस्विनी रानी सुप्रसिद्ध अनहल-
वाड़ा पट्टन के राजा की पुत्री और मेवाड़ के यशस्वी

रावल समरसी की रानी थीं । जब रावल समरसी केगर के युद्ध में दिल्लीश्वर पृथ्वीराज की सहायता करते हुए स्वदेश की स्वाधीनता-रक्षा के लिये वीरता पूर्वक लड़ कर मारे गये तो इनका अल्पवयस्थ पुत्र करण चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा परन्तु राज्य का सारा काम काज समरसी जी की पटरानी कर्म्मदेवी करती रहीं। वह बड़ी बुद्धिमती, दूरदर्शिनी और धर्म्मशीला थीं । राज्य का ऐसा उत्तम प्रबन्ध किया था कि अपने प्रतापी पति के मरने पर राज्य वैभव में तनिक भी फ़र्क़ न आने दिया ।

शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी का उत्तराधिकारी कुतबुद्दीन इस समय सारे हिन्दुस्तान में अपना राज्य विस्तृत करना चाहता था इसलिये वह इधर उधर लूट पाट करता हुआ चित्तौड़ पर भी चढ़ाई करने को आ पहुंचा । उसने समझा था कि जब चित्तौड़ का राजा अल्पवयस्थ है और उसकी संरक्षक एक स्त्री है तो चित्तौड़ पर अधिकार हो जाना कुछ कठिन नहीं है परन्तु उसे यह ज्ञात न था कि सिंह की स्त्री भी सिंहनी होती है। वीराङ्गना कर्म्मदेवी गुण, साहस और पराक्रम में अपने पति के समान ही थीं। जब कुतबुद्दीन ने चित्तौड़ पर गोले चलाने आरम्भ किये तो वह युद्ध के लिये तत्काल सन्नद्ध हो गईं। वह कवच धारण कर पुरुष वेष में अश्वारूढ़ हुईं और अपनी सेना को साथ ले कर रणभूमि में जा डटीं। राजपूत वीर योद्धाओं को रणभूमि में पराक्रम दिखाने के लिये उत्तेजित करती हुईं शत्रु दल से असाधारण वीरता से लड़ाने लगीं । युद्धोन्मत्त राजपूत मुसल्मान सैनिकों का भेड़ बकरियों की तरह

र करने लगे । जब बहुत सी यवन-सेना काम आ
ो तो कुतबुद्दीन ने समझा कि रस्सी के धोखे में
र पर हाथ डाला । यहां तो विजय प्राप्त करना टेढ़ी
र है । विजय तो अलग यहां से तो अपने सैनिक दल
प्राण बचा कर निकाल ले जाना भी कठिन है । निदान
तक गोली और तीर चलते रहे तब तक तो मुसलमान
भूमि में डटे रहे परन्तु जब खड्ग हाथ में ले कर
पूत उन पर वीरावेश में झपटे और घास की तरह से
लमानों को काटने लगे तब तो निरसाहस हो कर वे
ान छोड़ भागे । कर्म्मदेवी ने वीर राजपूतों के साथ कुछ
तक कुतबुद्दीन का पीछा भी किया था । जब कुतबुद्दीन
निकल गया तो कर्म्मदेवी विजय प्राप्त कर सानन्द
त्तौड़ में प्रविष्ट हुईं ।

धन्य है वीराङ्गना क्षत्राणियों को जो अपने पतियों
मृत्यु प्राप्त होने पर उनके यश और गौरव को स्थिर
ा कर उनकी वास्तविक अर्द्धाङ्गिनी होने का पूर्ण परिचय
ी रहीं ।

दुर्गावती ।

यह बुंदेलखण्ड की प्राचीन राजधानी महोबा के चंदेल
जा की पुत्री और गढ़मण्डल के राजा दलपतिशाह की
नी थीं । यह रानी जैसी रूपवती थीं वैसी ही वीरता
ौर साहस में अद्वितीय थीं

जब महोबा के राजा के पास गढ़मण्डल के राजा ने

दुर्गावती के सौन्दर्य्य और गुणों की प्रशंसा सुन कर व्याह के लिये संदेशा भेजा तो चंदेल राजा ने अपने उच्चकुल के विचार से गढ़मण्डल के राजा के साथ सम्बन्ध करना न चाहा और इसलिये कहला भेजा कि यदि ५० हज़ार सेना मेरी राजकुमारी के साथ चलने के लिये लाओगे तो विवाह हो सकेगा। ऐसे उत्तर देने से राजा ने समझा होगा कि न गढ़मण्डल का राजा ५० हज़ार सेना ला सकेगा और न विवाह कर सकेगा परन्तु गढ़मण्डल का राज्य उस समय बहुत बड़ा था, ३०० मील लम्बा और १०० मील चौड़ा था और भूमि बहुत उपजाऊ थी। जब गढ़मण्डल का राजा ५० हजार सेना लेकर महोबा में आया तो चंदेल राजा को अब अपनी प्रतिज्ञानुसार विवाह करना ही पड़ा।

कई वर्ष तक दुर्गावती अपने पति के साथ बड़े सुख चैन से रही। पीछे राजा एक १५ वर्ष के पुत्र वीरवल्लभ को छोड़ कर परलोक पयान कर गये। अपने पुत्र की अल्पावस्थता के कारण अब रानी ने सारे राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया। रानी के राज्य-शासन से प्रजा ... सन्तुष्ट थी और राज्य की सब प्रकार उन्नति थी। इस समय दिल्ली के तख़्त पर प्रतापशाली बादशाह अकबर था जो सारे हिन्दुस्तान को अपने आधीन करना चाहता था ... लि- गढ़मण्डल जो अबतक स्वतन्त्र राज्य था और जिसमें ७० ... गांव ऐसे बतलाये जाते थे जो कभी परदेशियों के आधीन ... हुए थे क्योंकर स्वाधीन रहना दिल्लीश्वर अकबर को सह्य ...। निदान गढ़मण्डल के राज्यापहरण के लिये कड़ा मानिकपुर सूबेदार आसिफखां ६००० सवार और १२००० पैदल

मण्डल पर चढ़ाई करने आया । वीराङ्गना दुर्गा-
ाय में इस से कुछ भय न हुआ । यह भी अपने
रक्षा के लिये ८००० सवार, २००० हाथी, और
दल सेना लेकर युद्ध करने के लिये कटिबद्ध हुई ।
वेश में सुसज्जित होकर और धनुष बाण व भाला
कर हाथी पर बैठीं । कामिनी का कोमल हृदय
स्वदेश की स्वाधीनता-रक्षा के लिये वज्
र प्रतीत होता था । जब दुर्गावती हस्ति-आरूढ़
ने सैनिक दल के आगे २ शत्रु सेना से लड़ने
तो गम्भीर स्वर से सेना को उत्तेजना देती हुई
-उत्साह और साहस बढ़ाने लगीं । विधर्मी शत्रुओं
देश से निकालने के लिये सर्व सैन्य उत्साहित
त्रु दल से लड़ने को उद्यत हुआ । दुर्गावती इस
। और वीर-आवेश से साक्षात् दुर्गा बनी हुई थीं।
तेमय मुख मण्डल देखकर यवन सैनिक विस्मित
ती ने ऐसे वीरता और पराक्रम से आसफखां की
अपने सैन्य का आक्रमण कराया कि घमसान
पर आसिफखां के ५०० सवार मारे गये और
र घबड़ा कर युद्ध भूमि से भागने लगी । दुर्गावती
खां की सेना का थोड़ी दूर तक पीछा किया ।
का विचार था कि यवन-सैन्य का इस समय पीछा
तो ऐसा त्रास दिया जाय कि फिर सहज में
पर आक्रमण करने का साहस न करे परन्तु उस
भी शत्रु सेना से लड़ते २ थक चुके थे इसलिये उन्होंने
सेना पर हमला करने का साहस न किया ।
के उच्च अफसर आसफखां को एक

अवला से दूसरी वार फिर पराजित होना पड़ा इसलिये तीसरी वार उसने बड़ी तैयारी कर गढ़मण्डल पर चढ़ाई की। कहा जाता है कि अब की वार वह तोप भी, जो पहले ऊंचा नीचा मार्ग होने के कारण न ला सका था, अपने साथ लाया था। दुर्गावती फिर उसी युद्धोत्साह से अपनी सेना ले कर आसफखां से लड़ने आईं। रानी ने पहाड़ के एक तंग मार्ग पर मोरचे जमाये परन्तु मुसलमानों ने दूसरी राह से मैदान में आ कर रानी की सेना पर आक्रमण किया। रानी के पुत्र ने दो वार ऐसी वीरता से धावे किये कि शत्रुओं के पैर उखड़ने लगे परन्तु तीसरी वार वह ऐसा घायल हो गया कि वहुत लोहू निकलने के कारण मूच्छित होने लगा। जीने की आशा न रही इसलिये रानी ने आज्ञा दी कि तम्बू में कुमार को ले जाओ। कायरों को भागने के लिये अच्छा वहाना मिल गया। युद्ध-क्षेत्र में केवल ३०० आदमी रह गये परन्तु दुर्गावती तो भी वीरता पूर्वक वरावर लड़ती रहीं। इसी समय एक तीक्ष्ण वाण उन की आंख में आकर लगा। रानी ने तत्काल उसे पकड़ कर खींच लिया परन्तु एक लोहे का टुकड़ा रह गया। इतने में हीं एक और वाण कण्ठ में आ लगा। इस को भी रानी ने खींच लिया परन्तु घाव की पीड़ा और अधिक रक्त वहने के सवव आंखों के सामने अंधेरा छा गया। एक सर्दार ने रानी से विनय की कि आप अव लड़ने योग्य नहीं हैं इसलिये आज्ञा हो तो वाहर ले चलूं परन्तु उस ने उत्तर दिया कि इस समय यद्यपि हमारी हार है परन्तु हमारी प्रतिष्ठा अभी तक हमारे साथ है, मुझे उचित नहीं है कि थोड़े दिन के

ये संसार में अपयश और अपकीर्त्ति प्राप्त करूं। यदि म स्वामिभक्त हो तो एक काम मेरे लिये करो कि शीघ्र हूग से मेरा प्राण-बध करो क्योंकि अब जीत की आशा हीं और शत्रु को मैं पीठ दिखाना नहीं चाहती। जब दार ऐसा न कर सका तो रानी ने यह देख कर कि शत्रु-ल मुझे चारोंओर से घेरता चला आ रहा है सम्भव है के मैं क़ैद हो जाऊं इसलिये तुरन्त बरछी छाती में मार र प्राण-परित्याग कर दिया। शेष सैनिक भी अपनी स्वामिनी के मृतक शरीर के पास लड़ते २ कट कर मारे गये रन्तु पीठ न फेरी।

स्लीमन साहब लिखते हैं कि दुर्गावती की समाधि अब तक पहाड़ों के बीच उस जगह में बनी हुई है जहां युद्ध हुआ था। जो यात्री इस सुनसान जंगल में हो कर जाते हैं सम्मान पूर्वक समाधि पर चमकीले बिल्लौर के टुकड़े, जो वहां बहुत हैं, चढ़ाते हैं। १६ वर्ष व्यतीत हुए तब मैं ने यह समाधि देखी तो रानी की युद्ध-कुशलता और वीरता को स्मरण करके मेरा हृदय भर आया और मैं ने अन्य लोगों की भांति एक टुकड़ा बिल्लौर का चढ़ा कर इस महारानी के शौर्य्यादि गुणों का सम्मान किया।

ताराबाई।

ताराबाई का जन्म १५ वीं शताब्दि के अन्त में हुआ है। ताराबाई बेदनौर के राव सुरतान की पुत्री थीं। राव सुरतान अन्हलवाड़ा के विख्यात सोलंकी राजाओं के वंशज थे।

जिस समय अलाउद्दीन ने गुजरात विजय की तो सोलंकी राजस्थान में आ वसे । उन्हीं की सन्तान में ये राव सुरतान थे । इनके पूर्वजों ने वनास नदी के ऊपर का टांक टोड़ा स्थान जीत कर वहां राज्य स्थापित किया। सुरतान के समय में लीला नामक एक पठान ने उनका राज्य छीन लिया इस कारण वे मेवाड़ अन्तर्गत अर्यली पर्वत की तलेटी में वेदनूर में राजधानी वना रहने लगे—परन्तु अपना खोया राज्य लेने के लिये राव सुरतान ने अति परिश्रम किया । इनकी पुत्री तारावाई जैसी रूपवती थी वैसी ही वीराङ्गना थी । अपने पूर्वजों के इतिहास सुन २ कर और यह समझ कर कि हमारे वाप दादे गुजरात के बड़े राज्य के राजा थे तथा टांक टोड़ा में वड़े २ पराक्रम हमारे पूर्वजों ने किये थे और पठानों ने हमारा राज्य छीन लिया है तारावाई ने स्त्रियों के वस्त्र और आभूषण पहरने छोड़ कर घोड़े की सवारी और धनुर्विद्या इस अभिप्राय से सीखी कि अपने पौरुष से अपने पिता का राज्य लौटाऊं । वह शीघ्रगामी घोड़े पर चढ़ कर तीर ऐसी उत्तमता से चलाती थी कि उसका निशाना कभी न चूकता था । अपने पिता के साथ काठियावड़ी घोड़े पर चढ़कर पठानों से एक युद्ध में लड़ी और वड़ा पराक्रम दिखलाया परन्तु शत्रुओं के अधिक सैनिक वल के सन्मुख इस की शूरवीरता और पराक्रम कुछ काम न आया ।

टांक टोड़ा के वापिस लेने में तारावाई सुरतान की पूर्ण सहायता करती रही परन्तु वे अपना राज्य न छुड़ा सके । भाट और चारणों ने तारावाई के पराक्रम और सुन्दरता की कथा सम्पूर्ण राजस्थान में फैला दो थी

यह सुन कर चित्तौड़ के राणा रायमल के पुत्र जयमल ने तारावाई के साथ ब्याह करने की इच्छा प्रकट की। सुरतान ने जयमल से कहला भेजा कि पठानों ने हमारा राज्य छीन लिया है यदि उसे दिलवा दो तो हम तारावाई तुमको ब्याह दें। जयमल ने यह बात स्वीकार की परन्तु प्रतिज्ञा पूरी करने से पहले ही उसने तारावाई से मिलना चाहा इसलिये राव को क्रोध हुआ और जयमल को मार डाला।

वीर राजपूत चाहे जैसी स्थिति में हों परन्तु अपनी मान मर्य्यादा का संरक्षण सदा करते हैं। राव सुरतान का राज्य छिन गया था, राणा के आश्रित होकर रहते थे, और तारावाई को जयमल के साथ ब्याह देना भी स्वीकार कर चुके थे परन्तु इतनी बातें होते हुए भी विवाह संस्कार तथा प्रतिज्ञा पूरी होने के पूर्व जयमल का तारावाई से मिलने आना अनुचित जान पड़ा और इसी क्रोध के आवेश में उन्होंने जयमल को मार डाला।

जिस प्रतिज्ञा पर जयमल तारावाई ब्याहने के लिये उद्यत हुआ था उसी को उसके भाई पृथ्वीराज ने भी स्वीकार किया। पृथ्वीराज के पराक्रम की चर्चा भी उस समय समस्त राजस्थान में फैल रही थी तथा पृथ्वीराज चौहान जैसे ही शौर्य्य आदि गुण इन पृथ्वीराज में भी होने से तारावाई भी उन पर मोहित हुई। उसने पिता की आज्ञा से पृथ्वीराज से, जब कि उन्होंने टोड़ा जीतने का वचन दे दिया, विवाह कर लिया। पृथ्वीराज अपना वचन पूर्ण करने के लिये उद्यत हुए और ताजियों के दिन टोड़ा जीतने का सङ्कल्प पृथ्वीराज ने किया। उस दिन अपने पांच सौ वीर राजपूत तथा एक विश्वासी मित्रको

साथ लेकर वह विजय के लिये निकले। ताराबाई भी साथ चलने को उद्यत हुई और अपने प्राणपति से कहा कि "मैं भी आपके दुःख सुख की भागिनी हूं इस कारण मुझे भी साथ ले चलिये, मैं आप को कुछ भी कष्ट न दूंगी किन्तु मैं यथाशक्य आपकी सहायता करूंगी। लीला पठान को मैं पहचानती हूं। अपने पिता के साथ उससे लड़ने कभी२ मैं भी गई हूं और मैं उसके वास स्थान से जानकार हूं। फिर लीला पठान जैसे प्रबल शत्रु से लड़ने को इतने थोड़े मनुष्य लेकर जाते हुए देख आप को अकेला वहां जाने दूं और मैं घर रहूं यह कदापि न होगा अतएव मुझे अवश्य अपने साथ ले चलिये।" पृथ्वीराज ने उसका आग्रह और प्रेम देख साथ चलने की आज्ञा दी। इस कारण ताराबाई पुरुषवेष धारण कर धनुष और भाला ले घोड़े पर चढ़ साथ चली। यथा समय सब टोड़ा के वाह्य प्रान्त में आन पहुंचे। सेना को नगर के बाहर छोड़ पृथ्वीराज और ताराबाई और उनका एक मित्र ये तीनों नगर में घुस गये और महल के आगे चौक में ताजिया उठाने के समय दर्शकों का बड़ा जनसमूह था उसी में जा मिले। पोशाक पहन कर जब लीला पठान वहां आया तो उसने पूछा कि "ये अजनबी शख्स कौन हैं"? यह सुनते ही पृथ्वीराज ने उस के एक भाला मारा और वीराङ्गना ताराबाई ने भी लक्ष्य कर एक तीर ऐसा मारा कि वह भूमि पर आ पड़ा। समस्त अफ़गान इससे भयभीत हो गये। तत्काल वे वहां से चल फाटक पर आन पहुंचे परन्तु वहां एक हाथी खड़ा था और मार्ग को रोक रहा था इसलिये ताराबाई ने अपनी तलवार के एक ही झटके से हाथी की सूंड़ काट डाली।

इस पर वह भाग गया। तीनों व्यक्ति कुशल पूर्वक अपने दल में आ मिले। फिर पृथ्वीराज अपनी सेना ले अफगानों पर टूट पड़े। बहुत से भाग गये और जो नहीं भागे काटे गये। इस प्रकार पृथ्वीराज ने विजय प्राप्त कर राव सुरतान को फिर अपनी जन्मभूमि में ला गद्दी पर बैठाया और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की।

इन की बहन सिरोही के देवरा राजा को व्याही थीं। यह राजा सब प्रकार अच्छे थे परन्तु अफीम का कसूंबा पीकर अपनी रानी को पलंग के तले धरती पर सुलाया करते थे और बड़ी यातना दिया करते थे। इनकी बहिन ने लिखा कि मुझे इस विपद से छुड़ा कर बुला लो।

पृथ्वीराज यह संदेशा सुनते ही सिरोही को चल दिये। अर्द्ध रात्रि के समय वहां जा पहुंचे और नसेनी रख कर महल में घुस गये और सिरोही के राजा प्रभुराव की गर्दन जा पकड़ी। यह भयंकर घटना देख कर वह अपनी रानी से कहने लगे कि मुझे अब बचाओ। तुम्हें मैं फिर कभी दुःख न दूंगा। पृथ्वीराज ने जो कुछ कहा प्रभुराव ने वैसा ही किया तब छुटने पाये। फिर प्रभुराव ने ऐसी प्रीति प्रकट में दिखलाई और अपनी रानी के साथ ऐसा बर्त्ताव आरम्भ किया कि दोनों बहिन भाई मन में प्रसन्न हुए। प्रभुराव ने पांच दिन तक पृथ्वीराज को आग्रह से सिरोही में रक्खा और बड़ा ही सत्कार किया यहां तक कि पृथ्वीराज की बहिन भी जो सिरोही में रहना पहिले न चाहतीं थीं अब अपने पति को छोड़ने को प्रसन्न न हुईं। पृथ्वीराज जब कुम्भलमेर को चलने लगे तो राजा ने कुछ मिष्टान्न मार्ग में खाने के लिये

पृथ्वीराज को दिया। जब पृथ्वीराज कुम्भलमेर के निकट आये तो उस मिष्टान्न में से कुछ खाया। उस मिष्टान्न को खाकर पृथ्वीराज थोड़ा चल कर मामा देवी के मन्दिर तक आये, इतने में विष का असर इतना बढ़ गया कि उनसे आगे न चला गया। अब वह प्रभुराव के कपट को समझे। यहां से उन्हों ने ताराबाई के लिये संदेशा भेजा कि मुख देखना हो तो तत्काल चली आओ। यह समाचार पाते ही वह दौड़ी आईं परन्तु उन के पहुंचने के पहले ही पृथ्वीराज का प्राण पखेरू उड़ चुका था। ताराबाई अपने पति का मृत शरीर गोद में ले कर विलाप करने लगीं और फिर सती हो गईं। इस प्रकार शूर वीर पृथ्वीराज और ताराबाई अपना यश भारत भूमि में छोड़ कर परलोकवासी हुए।
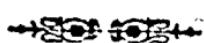
वीरमती।

गुजरात प्रदेश का कोई ऐसा पढ़ा लिखा इतिहास प्रेमी पुरुष न होगा जिस ने इस वीर और पतिव्रता स्त्री का नाम न सुना होगा। फार्बस साहब ने रासमाला नामक गुजरात का एक वृहत् इतिहास लिखा है। उस में इस वीर बाला का इतिहास भाट लोगों से सुन कर तथा कितनी एक दन्तकथाओं के आधार पर बड़ा हृदयग्राही लिखा है। इस वीरांगना ने अपने सतीत्व की रक्षा और पातिव्रत धर्म्म के पालन में जैसी वीरता

और पराक्रम दिखाया था वह आजकल की स्त्रियों के शिक्षा ग्रहण करने योग्य है।

यह वीराङ्गना गुजरात के प्रतापी नरेश, सिद्धराज जयसिंह के समय में हुई है। यह टुकटोडा के राजा राजजी की पुत्री थी। यह राजा चावड़ा वंश का था। इसके एक पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्र का नाम वीरज और पुत्री का नाम वीरमती था। वीरमती छोटी अवस्था से ही घोड़े पर चढ़ना और अस्त्र शस्त्र चलाना सीखने लगी थी इसलिये अपने भाई की तरह युद्ध कला में यह भी निपुण हो गई। वीरज कुंवर और इसकी अवस्था में चार वर्ष का अन्तर था। कभी२ लक्ष्य-भेद में वीरमती अपने भाई से बढ़ जाती थी। राजा इस बात से बड़ा प्रसन्न होता था।

राजा ने अपनी वृद्धावस्था देख कर अपने पुत्र को राज काज में प्रवीण किया। इतने में राजा राजजी अचानक अंधे हो गये इसलिये सब राज्य कार्य्य वीरज के सिर पर आ पड़ा और यह भी अपने पिता की सम्मति से सब कार्य्य भली भांति करने लगा। अपनी पुत्री को विवाह योग्य देख कर राजा को रात दिन चिन्ता रहने लगी। राजा चाहते थे कि वीरमती का विवाह उसी के योग्य किसी शूर वीर योद्धा से हो। इस समय मालवा के राजा उदयादित्य के पुत्र जगदेव की कीर्त्ति राजा राजजी ने सुनी और अपनी राजपुत्री की सगाई उस के साथ कर दी। वीरमती ने भी जगदेव की प्रशंसा सुनी थी इसलिये उसे भी जगदेव के साथ विवाह होने का समाचार सुन कर हर्ष हुआ। उचित समय पर राजा ने वीरमती का जगदेव के साथ विवाह कर दिया।

अब योद्धा जगदेव का भी वृत्तान्त सुन लीजिये।

जगदेव उसी वंश से था जिस में कि प्रतापशाली राजा भोज और विक्रम हो चुके हैं। उस समय परमार कुल के राजाओं की राजधानी धारा नगरी थी। जगदेव का पिता उदयादित्य यहीं का राजा था। उदयादित्य के दो रानी थीं। एक बघेलिनी और दूसरी सोलंकिनी। सोलंकिनी रानी के ऊपर राजा का प्रेम बिलकुल न था। जगदेव इसी रानी का पुत्र था। बघेली रानी के भी एक पुत्र था। उसका नाम रणधवल था। वह जगदेव से बड़ा था इसलिये राजगद्दी का स्वत्वाधिकारी वही था परन्तु जगदेव की भांति न तो वह बुद्धिमान था और न शूरवीर था। जगदेव ज्यों २ बड़ा होने लगा त्यों त्यों उसकी बुद्धि और वीरता की प्रशंसा चारों ओर होने लगी। जगदेव की बुद्धि, बल, पराक्रम और शौर्य्य की प्रशंसा सुन २ कर राजा उदयादित्य बड़ा प्रसन्न होता था परन्तु उसकी विमाता बघेली अपने पुत्र की प्रशंसा किसी से न सुन कर जगदेव से अत्यन्त द्वेष रखने लगी। सोलंकिनी रानी और जगदेव के विषय में झूंठ मूंठ कितनी ही बातें राजा से कह २ कर उसका मन उनकी ओर से फेरने की बड़ी चेष्टा करती रहती थी। वह सदैव ऐसी २ युक्तियों से बात कहती थी कि राजाको उसकी बातों पर विश्वास हो जाय। अन्त में यहां तक हुआ कि उनको उनके जागीर के गांव शुद्धान्त में भिजवा दिया। इतने पर भी जगदेव और उसकी मा धैर्य्य से रहे। रानी बघेली ने जगदेव का दरबार में आना भी बंद करा दिया था।

इस समय तक जगदेव लगभग २० वर्ष का हो गया था और उसके व्याह को हुए दो एक वर्ष हो चुके थे।

: दिन उदयादित्य अपनी कचहरी में बैठा हुआ था
: एक सामन्त ने जगदेव की दरिद्रता की बात कही।
ा ने उसी समय जगदेव को बुलवाया। जगदेव साधारण
ड़े पहने हुए राजा के पास आकर खड़ा हो गया।
जा को जगदेव को देख कर बड़ी दया आई। उसने तत्-
ल राज्य-भाण्डार से मूल्यवान् वस्त्र मंगवाकर दिये और
पनी कटार, तलवार और अपना घोड़ा दिया। इस
त की रानी बघेलिन को भी खबर होगई। जब राजा
ायमित समय पर रानी के पास गया तो रानी ने आदर
त्कार के पीछे दरबार की बात राजा से पूंछी। राजा
सब बात सुनकर रानी ने कहा कि " आप की कटार,
लवार और घोड़ा पर तो पाटवी कुमार का हक़ है।
ापने जगदेव को क्यों दिये? उन को अभी लौटाओ,
हीं तो, आज से अन्न जल त्याग दूंगी"। राजा ने कहा
क, " दीन पुरुष भी अपनी दी हुई वस्तु नहीं लेते। मैं
ो राजा हूं इसलिये मुझे अपनी दी हुई चीज़ें नहीं
ानी चाहिये।" परन्तु रानी अपनी ही हट पर दृढ़ रही
ो राजा ने सोचा कि यह स्त्री-हट है इसलिये जगदेव को
पनी दी हुई चीज़ों के साथ बुलवाया। जगदेव के
ाने पर राजा ने कहा " बेटा! जो तू मुझे प्रसन्न करना
ाहे तो कल जो मैं ने कटार, तलवार और घोड़ा
देया था उनको लौटा दे। मैं तुझे वैसी ही दूसरी तलवार
ादि दूंगा।" जगदेव यह बात सुन कर बड़ा अप्रसन्न
ुआ और रोष में आ कर कहने लगा, " पिता जी यह
ात तुम्हारी नहीं है, यह मेरी विमाता की है। यह लो
अपनी कटार, तलवार और घोड़ा, मेरा भाग्य जहां

परदेश में ले जावेगा वहां जा कर अपने प्रारब्ध की परीक्षा करूंगा । जहां जाऊंगा वहां सेर भर अनाज मिल ही जायगा । मैं राजपुत्र हूं , मुझ में तलवार की इतनी शक्ति है कि मैं अपनी जीविका जहां रहूंगा चला सकूगा । अभी तक मैं यहां दुःख में तो था पर आप की प्रीति से यहां रहता रहा । आज आप का मन मैंने जान लिया इसलिये अब मेरा इस नगरी में रहना ठीक नहीं ।" यह कह कर और राजा को कटार, तलवार और घोड़ा दे कर वहां से चल दिया । राजा ने उसको बहुत समझाया परन्तु रुका नहीं । राजा ने वे हथियार और घोड़ा भी लौटाया परन्तु उसने माना नहीं । राज्य के सामन्तों ने भी समझाया परन्तु उसने किसी की बात न सुनी । इस समय सम्पूर्ण धारा नगरी में शोक छा गया परन्तु रानी बघेली इस बात को सुन कर आनन्दित हुई ।

जगदेव वहां से चल कर अपनी माता के पास आया और सब वृत्तान्त कहा । बाहर जानेकी बात सुन कर मा को बहुत शोक हुआ क्योंकि पति से परित्यक्त होने पर उसके चित्त को अपने पुत्र का मुख देख कर ही ढाढ़स बंधता था सो वह जीवनाधार पुत्र भी परदेश चला । पुत्र के मुख से परदेश-यात्रा की बात सुन कर रानी कुछ बोल न सकी । जब पुत्र को परदेश जाने के लिये सर्वथा उद्यत देखा तो आंखों में आंसू भर कर कहा "जिस में तुझे सुख मिले सो कर" । जगदेव ने माता के चरण छू कर घोड़ा तय्यार किया और अस्त्र शस्त्रों सहित अश्वारूढ़ हो कर टुकटोडा की ओर चला । चलते चलते जब टुकटोडा में पहुंचा तो नगर के बाहर एक बाग में

ड़े से उतर पड़ा और घोड़े को एक पेड़ से बांध कर
ह वृक्ष के नीचे सो गया । वीरमती इस समय अपने
ाप के बाग में हवा खाने आई हुई थी । उस ने अपनी
सी को किसी मेवे के पेड़ से फल तोड़ कर लाने की
ाज्ञा दी । दासी मेवे लेती २ उस स्थान में जा पहुंची
हां जगदेव सोता था । उस ने जगदेव को पहचाना
ौर तत्काल वीरमतीके पास दौड़ी आई । वीरमती को
स की बात का विश्वास न हुआ इसलिये और दासियों
ं भेजा । वे सब भी ऐसी ही खबर लाईं । अब वीर-
ती जहां उसका पति सोता था गई और अपने पति को
हिचाना । वीरमती ने बड़ी अवस्था की दासियों को हटा
र जगदेव को जगाया । जगदेव जब जागा तो अपनी पत्नी
ो अपने पास बैठा हुआ देखा तो पूछा कि तुम यहां
से आईं ? वीरमती ने अपने आने का कारण बता कर
हा कि " आप ने यहां दर्शन दिया इस से मैं भाग्य-
ालिनी हुई हूं परन्तु मालूम होता है कि आप अकेले
िसी विशेष कारण से यहां आये हैं । यदि कोई अड़-
ल न हो तो कारण बताइये क्योंकि मैं आप के सुख
ःख की समभागिनी हूं । जगदेव ने अपनी स्त्री की बात
ुन कर आदि से अन्त तक सब बातें कहीं और कहा
के,-" परदेश जाने से पहले मेरी तुम से मिलने की बड़ी
ःभिलाषा हुई । इससे तुम्हारे पित्रालय में तुमसे मिलने
ाया और यहां विश्राम लेनेको सो गया । इतने में हीं तुम
यहां दैवसंयोग से आ कर मिल गईं । मैं परदेश नौकरी
के लिये जाता हूं ।" वीरमती ने कहा कि,-" मुझे अपने
साथ लिये बिना मत जाना क्योंकि जहां आप वहां मैं ।

घर में वन में जहां कहीं आप होंगे मैं आप के साथ रहूंगी। मुझे कहीं आप के साथ रहने में भय नहीं। लड़ाई में भी मैं आप की परछाईं की भांति आप के साथ रहूंगी और दिखलाऊंगी कि मैं कैसी वीराङ्गना हूं। आप का यहां से चला जाना ठीक नहीं क्योंकि दासियां यहां से महल में आप के आने का समाचार देने गईं हैं। वहां से कोई आप के लिवाने को आते होंगे।" इतनी हीं बात हो पाई थीं कि वीरमती का भाई वीरज कितने ही आदमियों को साथ लेकर जगदेव को लिवाने आया। दोनों साले वहनोई वड़े आनन्द से मिले और वीरज जगदेव को नगर में लिवा ले गया। राजा राजजी को जगदेव ने अभिवादन किया और राजा ने जगदेव से सब वृत्तान्त पूंछा। जगदेव ने र ब अपने विचार प्रकट किये और दूसरे दिन वहां से चले जाने के विषय में भी कहा। राजा राजजी जगदेव के उच्च विचार सुन कर प्रसन्न हुए और कहने लगे कि "यह दरबार भी तुम्हारा है, तुम यहां हीं रहौ। हम सव की यही इच्छा है।" जगदेव ने उत्तर दिया कि,—"मुझे एक वार परदेश जा कर अपने भाग्य की परीक्षा करने दें।" राजा के अधिक आग्रह करने पर जगदेव ने थोड़े दिन वहां रहना स्वीकार किया। चलने से पहले जगदेव ने वीरमती को बहुत समझाया कि,—"परदेश में तुम को साथ ले कार जाना ठीक नहीं। परदेश में स्त्री पुरुष का पग-बन्धन है। मैं तुम को पीछे से बुला लूंगा।" वीरमती ने जगदेव का कहना न माना और उत्तर दिया कि "यदि शरीर से छाया अलग हो सके तो मुझे यहां — जाइये।" जगदेव ने

बहुत समझाया परन्तु उसने कहा कि " मैं आपकी ऐसी स्थिति में आप का साथ नहीं छोड़ सकती । " १५ दिन तक जगदेव सुसराल में रहा । इस समय वीरमती के पिता माता ने भी बहुत समझाया परन्तु उसने किसी की कोई बात न मानी । राजा की आज्ञा लेकर वे दोनों वीर दम्पती घोड़ों पर चढ़ कर और शस्त्रास्त्र साथ ले कर परदेश के लिये चल दिये । राजा ने कुछ प्रतिष्ठित पुरुषों और वीरज को कुछ दूर तक के लिये साथ भेजा । जब वीरज और सब आदमी लौटने लगे तो वीरज ने कहा " यहां से टोडड़ा के लिये दो मार्ग हैं । एक मार्ग से टोडड़ा ग्राम २० कोस है और दूसरे से ४ कोस है परन्तु कम दूरी के मार्ग से जाने में प्राण-भय है क्योंकि जंगल में बाघ बाघिनी रहते हैं इसलिये दूर के रास्ते से ही जाओ । टोडड़ा से पाटन का रास्ता सीधा है " । वीरज ने बहुत समझाया परन्तु उन्होंने उसका कहना न माना । उन दोनों पति पत्नी ने कम दूरी के रास्ते से ही जाना निश्चय किया । वीर दम्पतियों ने शस्त्रास्त्र संभाल कर जंगल में प्रवेश किया । थोड़ी ही दूर गये थे कि एक व्याघ्रिणी को अपनी ओर आती हुई देख जगदेव ने उसके एक तीर मारा जो उस के सिर में हो कर आर पार निकल गया परन्तु वह ऐसे क्रोध में थी कि वह तीर के लगने पर भी एक दम जगदेव के ऊपर को झपटी । दूसरा तीर छोड़ते छोड़ते जगदेव के घोड़े के ऊपर आ गई । जगदेव ने जैसी ही तलवार निकालनी चाही कि तुरन्त उसके ऊपर थाप मारने को तय्यार हुई । इतने में वीरमती ने उसके ऐसे तलवार मारी जिससे मृतप्राय होकर नीचे गिरी । जगदेव को अपनी स्त्री

की ऐसी वीरता देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। यदि इस स-
मय वीरमती साथ न होती तो जगदेव के प्राण जानेमें कोई
कसर वाक़ी न थी । जगदेव ने अपनी प्राण-रक्षा के लिये
और विशेषतः ऐसी वीर पत्नी प्राप्त होने के लिये परमेश्वर
को धन्यवाद दिया। अभी व्याघ्रिणी से प्राण बच पाये थे
कि व्याघ्र रोष में आ कर उनकी ओर झपटा। वीरमती
ने उस के एक बाण मारा । बाण ऐसा लगा कि उस में
उठने की भी शक्ति न रही परन्तु फिर भी ज़ोर करके ऊपर
को उठने लगा कि जगदेव ने बल पूर्वक उसके भाला मारा।
वह फिर उठ न सका। इस प्रकार वीरता के काम करके
दोनों पति पत्नी टोडडा नाम के गांव में आये और एक
तालाव के ऊपर विश्राम लेने बैठ गये।

जब वीरज और उसके साथ के आदमी लौट कर
राजा राजजी के पास गये तो कम दूरी के रास्ते से टोडडा
को दोनों के जाने का समाचार कहा। राजजी ने यह सुन
कर तुरन्त अपने आदमियों को भेजा और आज्ञा दी कि
तुम बहुत जल्द जंगल में जाओ और जिन लोगों को
मरा देखो उनका वहीं अग्निदाह करो या उनकी वीरता
की ख़बर लाओ । इन आदमियों ने जंगल में जाकर
एक व्याघ्र और व्याघ्रिणी को मरा हुआ तो देखा परन्तु
वहां किसी मनुष्य का मरना न मालूम हुआ । वे आदमी
टोडडा गांव तक गये । वहां जगदेव और वीरमती को
एक तालाव के तट पर बैठे हुए आनन्द से बातें करते
हुए देखा। उन आदमियों को आया हुआ देख कर
जगदेव ने पूछा कि तुम लोग यहां कैसे आये ? आद-
मियों ने उत्तर दिया कि राजा जी की आज्ञा से आप

। कुशल पूर्वक जंगल से निकल जाने का हाल मालूम
रने आये हैं। यह सुन कर जगदेव ने उत्तर दिया कि
जा जी से कहना कि हम राजी खुशी से हैं और तुम्हारी
त्री ने व्याघ्र और व्याघ्रिणी के मारने में बड़ी वीरता
दिखलाई है । अब हम सकुशल पाटन को जा रहे हैं।
ाजा अपनी पुत्री की वीरता की बात सुन कर बड़ा
सन्न हुआ।

जगदेव और वीरमती आनन्द पूर्वक यात्रा करते
ए थोड़े दिनों में पाटन में आपहुंचे। यहां आकर सहस्र-
िंग तालाब के तीर घोड़ों से उतर पड़े और थोड़ी देर
िश्राम लेने के पीछे जगदेव ने कहा कि मैं पहले नगर में
ा कर कोई घर ठीक कर आऊं तब तक तुम यहीं
ठी रहना। वीरमती घोड़ों को एक पेड़ से बांध कर
नके पास बैठ गई।

पाटन में इस समय डूंगरसी नामक खवास जाति का
ोतवाल था । उसने पाटन की प्रजा को लूट कर बहुत
न इकट्ठा किया था । उसके लालकुंवर या लालराज
ाम का एक ही बेटा था इससे वह अधिक लाड़ से बिगड़
र दुर्व्यसनों में फँस गया । वह पाटन की जामोती
ाम की प्रख्यात वेश्या के यहां जाया आया करता था ।
ैसे घर घर फिरने वाले कुत्ते का पेट भरा भी रहे तो
ी वह एक २ टुकड़े के लिये जगह २ जाता है।
ही दशा दुराचारियों की रहती है। उनको चाहे जैसी
ूपवती स्त्री मिल जाय परन्तु उनको कभी सन्तोष नहीं
ोता और वे कभी अपनी श्वानवृत्ति नहीं छोड़ते ।
यही दशा इस कोतवाल-पुत्र लालकुंवर की थी । इसने

जामोती वेश्या को बहुत धन देने का लालच दे कर कि
कुलवती रूपवती स्त्री के फँसाने के लिये कहा था
दुष्टा रंडी ने भी उसकी इच्छा पूर्ण करने का वचन दिया
वह गणिका कुछ दिनों से किसी सुन्दरी की खोज में तो
ही कि इतने में वीरमती और जगदेव पाटन में आये।

वीरमती सहस्रलिंग तालाव के ऊपर बैठी थी
जामोती गणिका की दासी वहां पानी भरने के
आई। वह वीरमती का रूप देख कर बड़ी हर्षित
क्योंकि उसे लालकुंवर की बात याद आई और उसने
अपनी स्वामिनी के हाथ फँसाने का निश्चय किया।
दासी बड़ी ही चालाक थी। उसने वीरमती के पास
नम्रता से इस का सब हाल पूछ लिया और कहा
सिद्धराज की पटरानी की बड़ी दासी हूं। उसने
जामोती के पास जाकर सब हाल कहा। जाम
अपना रथ तय्यार कराया और २५-३० सवार व
सिपाही अपने साथ लेकर सहस्रलिंग तालाव पर
वीरमती को देखकर मानो उसने पहचान लिया
रीति से उसने कहा,—" बेटी! तुम्हारे यहां आने
मेरी दासी ने मुझ से अभी कही, मैं तुम्हारे उस
दित्य की बहिन हूं और महाराज सिद्धराज मेरे
जगदेव भी इस समय महाराज के पास पहुंच
दरबार में बैठा है इसलिये तुम भी मेरे साथ चल
सब बातें जामोती ने इस रीति से कहीं कि
उसकी बातों का विश्वास हो गया। जामोती
वस्त्र व आभूषण पहने हुए थी और कितने ही
सिपाही साथ में थे इसलिये उसको रानी सम

सन्देह न रहा। रथ में बैठा कर जामोती वीरमती को अपने घर लाई। जामोती का घर भी एक महल था इसलिये उसके घर पहुंच कर भी वीरमती को कुछ सन्देह न हुआ। वीरमती को जब यहां आये देर होगई तो उसने जगदेव के विषय में पूछा। जामोती की दासियों में से किसी ने बाहर जाकर और लौट आकर कह दिया कि जगदेव महाराज के पास ही बैठे हुए हैं और अभी उनके उठ कर आने का अवसर नहीं है। जब भोजन करने का समय हुआ तो वीरमती ने जगदेव के भोजन कराने के लिये बड़ी हट की तो एक दासी ने फिर बाहर जा कर और इधर उधर घूम फिर कर के लौट आने पर कहा कि राजकुमार जगदेव ने महाराज के साथ भोजन कर लिया है और १० बजे पर आने के लिये कहा है। वीरमती १० बजे तक अपने पति की आगमन-प्रतीक्षा करती हुई बैठी रही। १० बज चुके परन्तु मेरे प्राणनाथ आयेनहीं यह सोच २ कर वीरमती बड़ी चिन्तित और शोकित हुई। इतने में जामोती ने कहा कि तुम्हारे और जगदेव के लिये ऊपर कमरे में पलंग बिछे हुए हैं। वहां पर जगदेव पीछे के रास्ते से आगये हैं तुम भी वहां जाओ। स्वामी के दर्शन को वीरमती बड़ी उत्सुक थी इसलिये यह बात सुनकर बड़ी जल्दी से वहां गई। वीरमती वहां पहुंची परन्तु जब जगदेव के बदले वहां कोई और पुरुष बैठा हुआ देखा तो उसको अब यह कपट मालूम हुआ। परन्तु वीरमती घबड़ाने वाली अबला न थी। उसने अपने सतीत्व की रक्षा अपने बाहुबल से करने का दृढ़ निश्चय किया। उस के पास इस समय कटार थी परन्तु लालकुंवर के पास तल-

वार थी इस से द्वंद्व युद्ध में जीतना बहुत कठिन समझ कर छल कौशल से मारने का उसने विचार किया। अब वह लालकुंवर के समीप गई तो उसके मुख से मद्य की दुर्गन्धि निकल रही थी।

वीरमती ज्यों हीं कमरे में पहुंची तो लालकुंवर, जो कि उसकी बाट जोह रहा था, तत्काल उसकी तरफ को आया परन्तु वीरमती तुरंत पीछे हट गई। उसने अपनी पवित्र देह से पापी लालकुंवर का हाथ लगने नहीं दिया। वह वीरमती को ललचाने के लिये अपने धन दौलत और प्रभुत्व का बखान करने लगा। वीरमती ने पास में मद्य की बोतल रक्खी हुई देखकर उसमें से एक प्याला मदिरा का भरा और लालकुंवर को पीने के लिये दिया। लाल कुंवर ने उस सुन्दरी के हाथ का प्याला बड़ी खुशी साथ लिया और झट एक प्याला अपने हाथ से भर वीरमती को दिया। वीरमती ने पीने के मिस से उस पीछे को गिरा दिया। दुबारा फिर एक मद्य का प्या वीरमती ने लालकुंवर को दिया जिस से वह अचेत गया। अब उसमें चलने फिरने और बोलने की भी न रही। वीरमती ने अब अपनी कटार निकाली उसके पेट में घुसेड़ दी। लालकुंवर तत्काल मर गया वह मर चुका तो उसकी कमर से तलवार खोल ली एक चद्दर में उसके शव को लपेट कर एक खिड़की बाहर को फेंक दिया। पीछे अपने कमरे के सब व खिड़कियां (केवल एक सड़क की तरफ की खुली रक्खी) बंद करके और कृपाण को अपने लेकर कमरे के बीच में बैठ गई।

आधी रात के समय उस मुहल्ले का चौकीदार घूमता हुआ जब उस स्थान में आया जहां वीरमती ने वह गठरी फेंकी थी तो गठरी को देख कर उस ने विचार किया कि किसी चोर को इस गठरी को ले कर भागने का अवसर नहीं मिला इसलिये यहां छोड़ कर चला गया है। वह उस को उठा कर अपनी चौकी को ले गया और जब रोंद में कोतवाल आया तो उस गठरी के सड़क पर मिलने की इत्तिला दी। कोतवाल ने गठरी को खुलवाया तो अपने पुत्र की लहाश देख कर बड़ा घबड़ाया। जब उस के पुत्र के विषय में जांच की गई तो उस को मालूम हुआ कि कामोती वेश्या के घर रात को गया था। जब कामोती से पूछा गया तो उस ने उत्तर दिया कि वीरमती के कमरे में है। जब वीरमती के कमरा के पास सिपाही गया तो वीर बाला वीरमती ने भीतर से कहा कि,— "इस लम्पट को उचित दण्ड दिया गया है, इस ने मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहा इसलिये इस का वध कर के इस का शव बाहर फेंक दिया गया है।" यह सुन कर डूंगरसी को बड़ा क्रोध आया और उस ने सिपाहियों को वीरमती के कमरे में घुस कर पकड़ लाने के लिये आज्ञा दी। जो खिड़की खुली हुई थी उस से जो सिपाही भीतर घुसना चाहता था उसी की गर्दन तलवार से काटती थी, जिस से सिर कमरे में गिरता था और धड़ सड़क पर गिरता था। जब इस तरह से २०–२५ के सिर इसने काट डाले तो फिर किसी का साहस भीतर जाने का न हुआ। अब पाटन नगर भर में यह बात फैल गई। जब सिद्धराज ने यह बात सुनी तो कोतवाल के पास आज्ञा भेजी

कि जब तक मैं न आऊं तब तक उस वीर स्त्री से कुछ न कहो। मैं मौक़े पर आकर सब बातों की जांच करूंगा। कोतवाल इस आज्ञा के पहुंचने पर चुप हो गया। महादेवी वीरमती लाल २ नेत्र किये और खड्ग हाथ में लिये खिड़की के पास खड़ी रही।

अब ज़रा जगदेव का भी हाल सुनिये। जगदेव नगर में जा कर और एक घर भाड़े पर ले कर जहां अपनी पत्नी को बैठा छोड़ गया था वहां आया तो वीरमती को न पा कर बड़ा दुःखित हुआ। उस स्थान पर उसने रथ, घोड़ों और आदमियों के पैरों के चिन्ह देखकर समझा कि किसी ने कपट किया और यह भी समझ लिया कि वह पाटन के भीतर ही गई है। वह निराश हो कर नगर में आया। उसने सिद्धराज से मिलने का विचार किया परन्तु यह विचार कर कि मेरी इस दीन दशा में इतने बड़े राजा से अनायास मुलाक़ात कैसे हो सकती है राजा के पास किसी ज़रिये से पहुंचने का उपाय सोचा। वह सिद्धराज के सैनिक अफसरों के पास गया और उन से अपनी नौकरी के लिये कहा। उनमें से एक ने अपने पास नौकर रख लिया। यहीं पर उसने एक वीर नारी के हाथ से अपने सतीत्व की रक्षा में डूंगरसी कोतवाल के लड़के के वध होने का और २०—२५ सिपाहियों का उसके पकड़ने में मारे जाने का समाचार सुना। यह बात सुन कर जगदेव ने विचार किया कि ऐसा पराक्रम तो मेरी स्त्री के सिवाय किसी और में नहीं दीखता। यह वह सोच ही रहा था कि उसे फिर ख़बर लगी कि वह चावड़ी वंश की राजपुत्री है और जामोती वेश्या उसे बहका

कर कल अपने घर ले गई थी। अब उसको विश्वास हो गया कि यह मेरी ही स्त्री है इसलिये उसने दुर्घटना के ठिकाने पर जाने का निश्चय किया। जब सिद्धराज उस स्थान पर पहुंच गये तो पीछे से जगदेव भी वहां जा पहुंचा। सिद्धराज ने जामोती के घर पहुंच कर वीरमती के कमरे के पास जा कर कहा,—" चावड़ी राजपुत्री ! तुमने पाटन में आ कर जैसी वीरता का काम किया उससे मैं बड़ा सन्तुष्ट हुआ। तुमने सच्ची क्षत्राणी होने का परिचय दिया है, तुम धन्य हो। मैं पाटन का राजा सिद्धराज तुमसे कहता हूं कि तुम निर्भय रहो। तुमको अब किसी तरह का कष्ट नहीं पहुंचेगा। पापी को पाप का बदला मिला। तुमको आज से मैं अपनी पुत्री तुल्य समझूंगा। तुम मुझ से कहो कि तुम्हारा नाम क्या है ? तुम कहां से क्यों आई हो ?" यह सुन कर वीरमती ने भीतर से उत्तर दिया " महाराज ! मैं चावड़ा कुल के टुकटोड़ा के राजा राजजी की पुत्री हूं, वीरज की बहिन हूं। परमार कुल-दीपक धारा नगर के राजा उदयादित्य के कुमार जगदेव की भार्य्या हूं। मेरे पति यहां नौकरी करने आये हैं। उनके साथ मैं आई हूं। सहस्त्रलिंग तालाब पर मुझको मेरे स्वामी छोड़ कर घर ढूंढने गये थे कि इसी अन्तर में यह गणिका जामोती मेरे पास पहुंची और मुझसे कहा कि मैं यहां के महाराज की पटरानी हूं और इस तरह मुझको अपने फंदे में फँसा कर यहां लिवा लाई और रात को दुष्ट कोतवाल-पुत्र को मेरे पास भेजा। मैं ने अपने सतीत्व धर्म्म के रक्षार्थ इसका वध किया। अब जब तक मैं अपने पति राजकुमार जगदेव का मुख न देख लूंगी इस कमरे

से बाहर न निकलूंगी । यदि मुझे बलात् यहां से निकाला
जावेगा तो लड़ते २ यहीं प्राण दे दूंगी । यह वचन सुन
कर जगदेव ने, जो वहां हीं पास में खड़ा हुआ था,
सिद्धराज के पास आकर उनको अभिवादन किया और
अपनी पत्नी से कहा,—" चावड़ी जी ! बाहर निकल आओ,
मैं यहां हीं हूं । तुम घोर संकट में फँसी परन्तु अब कुछ
भय नहीं है ।" वीरमती ने जगदेव की आवाज़ पहचान
कर उत्तर दिया कि मैं अभी बाहर आती हूं । महाराज
सिद्धराज ने जगदेव को देखा और फिर वीरमती से कहा,—
" तू आज से मेरी धर्म्मपुत्री हुई ।"

महाराज सिद्धराज ने अपने नौकरों को आज्ञा की कि
वीरमती और जगदेव को आराम के साथ अच्छे स्थान
में ठहराओ और डूंगरसी से कहा कि तुमने अपने पुत्र
को बुरी आदत सिखा कर कुलवती स्त्रियों के धर्म्म नष्ट
करने के लिये स्वतन्त्रताचारी बना दिया था । तुम नगर-
रक्षक हो कर अपने पुत्र का ऐसा अनाचार और अत्याचार
देखते रहे इसलिये तुमको उचित फल मिल गया । इस
के पश्चात् डूंगरसी का घर लुटवा कर अपने राज्य
की सीमा से बाहर निकलवा दिया । जामोती और उसकी
सहचरी दासी के भी घर लुटवा लिये और नाक व कान
कटवा कर नगर से बाहर निकलवा दीं ।

सिद्धराज ने पीछे जगदेव को अपने दर्बार में बुलवा कर
बहुमूल्य शिरोपाव दिया और बड़ी वेतन नियत करके
अपने सामन्तों में उच्च पद दिया ।

यह वीर बाला वीरमती के पराक्रम का ही प्रताप
था कि जगदेव को पाटन में सिद्धराज के दरबार में अनायास

उच्च पद मिला परन्तु पीछे अपने पराक्रम से सिद्धराज को अत्यन्त प्रसन्न करके पदोन्नति करते २ सामन्तवर्ग में सर्वोच्च पद प्राप्त किया । इस से और सामन्त जगदेव से ईर्ष्या द्वेष करने लगे । जब यह बात राजा सिद्धराज को मालूम हुई तो एक दिन जगदेव की व और सामन्तों की परीक्षा की । रात का समय था । नगर के बाह्य प्रान्त से स्त्रियों की सी कभी हंसने की और कभी रोने की आवाज़ आती थी । पहले तो सिद्धराज ने अपने अन्य २ सामन्तों को इनका खोज लगाने को भेजा, पीछे जगदेव को भेजा । जगदेव जिधर से स्त्रियों की आवाज़ आती थी उधर गया । राजा भी इसके पीछे २ गुप्त रूप से चला । राजा को राह में कोई सामन्त देखने में न आया । जगदेव आवाज़ के आधार से श्मशान में पहुंचा । वहां कितनी ही स्त्रियां हँसती और कितनी ही रोती देखीं । रोती हुई स्त्रियों के शब्द की ओर जाकर उसने उनके रोने का कारण पूछा । उन स्त्रियों ने उत्तर दिया कि,—" हम पाटन नगर की देवी हैं । कल सवेरे १० बजे महाराज सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु है । उनके मर जाने पर हमको दुःख पहुंचेगा इसलिये रोती हैं । यह सुन कर जगदेव फिर उधर गया जहां स्त्रियां आनन्द मंगल के गीत गा रहीं थीं और उनसे उनके हर्षमय गान का कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि हम दिल्ली की देवी हैं और सिद्धराज महाराज को लेने आई हैं । हम ऐसे महान् नरपति को कल १० बजे ले जावेंगी [illegible] हैं ।

जगदेव ने [illegible]

सकते [illegible]

कोई वीर सामन्त अपना सिर दे तो १२ वर्ष की आयु सिद्धराज की बढ़ जावेगी । जगदेव अपना सिर देने को तैयार हुआ और उन स्त्रियों से कहा कि जो तुम मुझे थोड़ा समय दो तो मैं अपनी स्त्री से मिल आऊं । उन स्त्रियों से पूछ कर जगदेव अपने घर आया और सब हाल अपनी स्त्री से कहा । उस वीर स्त्री ने जो उत्तर दिया वह अत्यन्त प्रशंसा योग्य है । वह बोली,—" धन्य भाग्य जो हम से अपने उपकारी सिद्धराज का प्रत्युपकार हो सके । हम को सिद्धराज से अकथनीय लाभ पहुंचे हैं और सब तरह के सुख उन के प्रताप से भोगे हैं इसलिये यदि हमारे शरीर अपने उपकारी के काम आ सकें इस से अच्छी बात क्या है । क्षत्रिय-धर्म्म यही है कि अपने साथ जो उपकार करे उस का बदला दे इसलिये मैं और तुम दोनों अपने २ शरीर का बलिदान दे दें । " जगदेव ने कहा " तुम्हारे बिना बालक कैसे रह सकेंगे" ? वीरमती ने उत्तर दिया "कि तुम देवियों से पूछो कि यदि एक के बलिदान से १२ वर्ष की आयु बढ़े तो क्या ४ प्राणियों के बलिदान से ४८ वर्ष की अवस्था बढ़ जायगी " । जगदेव लौट कर उन देवियों के पास गया और उनसे अपनी पत्नी की बताई हुई बात पूछी । जब जगदेव की प्रार्थना देवियों ने स्वीकार कर ली तो वीरांगना वीरमती अपने पति के साथ अपनी और अपने पुत्रों की भेट दे देने को उद्यत हुई । जब जगदेव ने अपने बड़े पुत्र को देवियों के अर्पण करने को अपना खड्ग उठाया तो देवियों ने कहा, " बस ! बस !! हम ने तुम्हारी स्वामिभक्ति देख ली । हम को तुम्हारी स्वामिभक्तता और वी[illegible] परी[illegible]

भी सो ले ली। तुम दोनों पति पत्नी के समान स्वामि-भक्त और वीर इस संसार में इस समय कोई नहीं है। आज तुम अपनी कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। तुम धन्य हो, धन्य हो।। धन्य हो।।।

दूसरे दिन सिद्धराज ने सब सामन्तों के आने पर रात की बात पूछी। सब ने भिन्न २ उत्तर दिये। जगदेव चुप बैठा रहा। उसने किसी की बात को मिथ्या न बत-लाया। पीछे सिद्धराज ने कहा कि "मैंने सब की परीक्षा के लिये रात की बात का पता लगाने को कहा था परन्तु एक जगदेव के सिवाय किसी ने अपना कर्त्तव्य पूर्ण नहीं किया। जगदेव जैसा वीर और स्वामिभक्त है वैसा तुम में एक भी नहीं है। जगदेव को उस की वीरता और स्वामिभक्तता की अपेक्षा स्वल्प वेतन मिलती है।" फिर उन्होंने रात की सारी बात कही जिस को सुनकर सब लोग जगदेव की और उससे अधिक उस की धर्म-पत्नी वीरमती की प्रशंसा करने लगे। इस समय से जगदेव पर राजा सिद्धराज की असाधारण कृपा रहने लगी। जगदेव भी राजा का बड़ा उपकार मानता रहा और बड़े २ पराक्रम के काम करता रहा परन्तु उन का सम्बन्ध वीरमती के चरित्रों से न होने के कारण उन का यहां उल्लेख करना उचित नहीं समझते।

बहुत वर्षों तक नौकरी करने के पीछे महाराज सिद्धराज से छुट्टी लेकर जगदेव अपनी स्त्री और बाल बच्चों समेत अपने मा बाप से मिलने को धारा नगरी में आया। यहां पहले अपने पिता से मिला। फिर रानी बघेली के घर [illegible] और कहा,—"माताओ! तुम्हारे ही प्रताप से मैं

यह पराक्रम करने के योग्य हुआ। न तुम होतीं और न मैं बाहर परदेश में जा सकता और न पराक्रम दिखाने का अवसर मिलता। "

जगदेव परमार ८५ वर्ष की अवस्था में मरा और उस के साथ वीरमती सती हुई। इस तरह वीर बाला वीरमती के जीवन का अंत हुआ।

मिलनदेवी।

दक्षिण के कर्नाटक देश में चन्द्रपुर के राजा जयकेशी के मिलनदेवी नाम की कन्या थी। यद्यपि रूप लावण्य में वह साधारण थी परन्तु बड़ी गुणवती और योग्य थी। जब मिलनदेवी बड़ी हुई तो उसके पिताने एक चित्रकार से उसका एक चित्र बनवाया और उस चित्र को अपने दूतों को देकर राजकुमारी के सम्बन्ध के लिये इधर उधर भेजा। बहुत ढूंढ खोज के पश्चात् एक प्रतापी वर मिल गया। यह वर गुजरात देश का पाटन नगर का बुद्धिमान् राजा करण था। यह मिलनदेवी के चित्र को देख और गुणों को सुन कर बड़ा प्रसन्न होकर विवाह करने के लिये उद्यत हो गया और अपने राजकुल की रीत्यनुसार अपना खांडा चन्द्रपुर भेजा और बरात में बड़े २ सरदार तथा अहलकार भेजे।

विवाह की निर्द्धारित लग्न पर मिलनदेवी का विवाह हो गया। और बरात भी आनन्द पूर्वक विदा हो कर

पाटन में आगई। परन्तु एक नई बात उठ खड़ी हुई। चित्रकार ने जो मिलन देवी का चित्र बनाया था वह बड़ा ही सुन्दर और चित्ताकर्षक था परन्तु वास्तव में मिलन देवी वैसी रूपवती नहीं थी। चित्रकार की प्रवीणता ही मिलन देवी के ऊपर एक घोर आपत्ति लाने का कारण हुई। राजा करण ने एक ही बार मिलन देवी से भेट की थी कि उसका रूप देख कर मिलन देवी से ऐसा उस का चित्त हट गया कि फिर कभी भी उस का चित्त उसके महल में जाने के लिये नहीं चला। मिलन देवी की ओर से राजा सर्वथा विरक्त होगया।

पति ही पत्नी का सर्वस्व है। स्त्री से चाहें जो अप्रसन्न होजाय कुछ भी दुःख की बात नहीं है। परन्तु यदि पति ही अप्रसन्न होजाय तो पत्नी के लिये संसार में कहीं भी सहारा नहीं रहता। पत्नी अपने पति को अपने प्राण से बढ़ कर समझती है और पति को प्राणेश्वर मानती है। भला प्राणेश्वर के छोड़ देने से पत्नी क्या संसार में अपने को जीवित समझ सकती है? मिलन देवी युवावस्था में प्रवेश कर चुकी थी, इस अवस्था में अपने प्राणप्रिय पति के विरक्त होजाने से मिलनदेवी को जो चिन्ता हो सकती हैं, जो दुःख पहुंच सकता है वह सहृदय ही जान सकते हैं। मिलनदेवी रात दिन उत्कट चिन्ता से चिन्तित रहती थी। एक संस्कृत कवि कहता है कि "चिता और चिन्ता दो शब्द हैं और दोनों जलानेवाले हैं परन्तु अन्तर इतनाही है कि चिता निर्जीव को जलाती है और चिन्ता जीवित को।" फिर मिलनदेवी की रात दिन की चिन्ता से क्या दशा होगई होगी आप समझ सकते हैं।

यद्यपि मिलन देवी को सब तरह के सांसारिक सुख प्राप्त थे परन्तु पति के अप्रसन्न रहने से वह अपने को बड़ी दुःखी बल्कि मृतवत् समझती थी। उसकी दशा को देख कर उस की सास भी शोक से विकल हो उठी। राज-माता ने बेटे करण को बहुत कुछ समझाया बुझाया किन्तु करण की समझ में कुछ भी न आया। उस का मिलन से सम्मिलन तो क्या वह उस का नाम भी न सुनना चाहता था। अन्त में मिलन देवी को इन सब बातों से संसार निवास करने योग्य नहीं जंचा, उस ने अपना प्राण त्याग करने का विचार किया। उस की सास ने भी उस का साथ देना चाहा परन्तु सौभाग्यवश दासियों को किसी प्रकार इस भयानक घटना के घटित होने की खबर लगी और उन्हों ने इस हत्या काण्ड से उन दोनों सास बहू को रोक लिया।

मिलन देवी ने अब अपने हृदय में धैर्य्य धारण कर अपनी चातुरी और बुद्धिमत्ता से ऐसे यत्न किये जिससे एक बार उस के पति उस को दर्शन दे देवें। मिलन देवी की दासियां भी इस विषय में उद्योग करने लगीं। परन्तु करण के चित्त में ऐसी गांठ पड़ गई थी कि वह सुलझती ही न थी। किसी ने सच कहा है 'जहां गांठ तहां रस नहीं यही प्रेम की बान'। ईख में जहां गांठ होती है वहां रस नहीं होता यही दशा प्रेम की भी है। किन्तु समय पलटा उलटा विधाता सीधा हुआ। उद्योग करते रहने पर कभी न कभी सफलता प्राप्त होती ही है। एक रात्रि को राजा करण मिलनदेवी के महल में धोखे से पहुंचा दिया गया। इस समय मिलनदेवी के योग्यता पूर्ण

वार्तालाप से राजा करण बड़ा प्रसन्न हुआ और पश्चा-त्ताप करने लगा कि हाय मैं ने अपनी ऐसी योग्य पत्नी का ऐसा निरादर क्यों किया । अच्छे दिन आते हैं तो सब ही बातें अच्छी हो जाती हैं । निदान करण अपनी धर्म-पत्नी की सुयोग्यता और सद्गुणों से ऐसा प्रसन्न हुआ कि शेष जीवन काल में मिलन के सम्मिलन विना सारा संसार उसको अन्धकारमय दीखने लगता था।

मिलनदेवी यद्यपि अधिक रूपवती न थी तो क्या हुआ उसके गुण उसकी सुन्दरता से कहीं बढ़ चढ़ कर थे । मिलन ने अपने गुणों से करण को वशीभूत कर लिया था । करण बहुधा उसकी सम्मति अपने राजकीय विषयों में भी लिया करता था । इससे मिलनदेवी को राजकार्य्यों के विषय में अच्छी जानकारी हो गई । गान विद्या में भी मिलनदेवी बड़ी प्रवीण थी। जब वह अपने मधुर स्वर से अलापती थी तो करण मुग्ध हो जाता था। इसी तरह आनन्द मंगल में कितने ही वर्ष व्यतीत हुए और एक पुत्र के मुख देखने का भी शुभअवसर प्राप्त हुआ । इस पुत्र का नाम सिद्धराज रक्खा गया । यह सिद्धराज गुजरात देश में परम प्रसिद्ध राजा हुआ है । इनके समय से राजधानी पाटन की बड़ी प्रसिद्धि हुई। सोलंकी वंश के क्षत्रियों को इनके समय से विशेष मान और गौरव प्राप्त हुआ । जैसे चौहानों में पृथ्वीराज प्रसिद्ध हैं वैसे ही सोलंकी वंश में सिद्धराज प्रसिद्ध हैं। सारा गुजरात प्रान्त इन्हीं के अधि-कार में था। इनकी जो इतनी उन्नति और प्रसिद्धि हुई वह इनकी योग्यता के कारण जो कि अपनी माता के शिक्षण और निरीक्षण में प्राप्त हुई । इससे हमारे पाठक

समझ सकते हैं कि योग्य माताओं की कितनी आवश्यकता है। और स्त्रियों में रूप से अधिक गुणों की आवश्यकता है। जब तक युवा पुरुष यौवन-मदान्ध होते हैं वे केवल अपनी स्त्रियों में रूप को देखते हैं परन्तु जब संसार में कार्य्य करके अनुभव प्राप्त करते हैं तो उनको ज्ञात होता है कि हमको केवल रूपवती की ही नहीं किन्तु ऐसी बुद्धिमती और शीलवती भार्य्या की अपने सहवास के लिये आवश्यकता है जो कि हमारे कामों में हमको यथोचित सम्मति और सहायता दे सके। करण को सौभाग्य से ऐसी ही भार्य्या मिली थी इससे उसको राज्य-कार्य्यों में भी बहुत सहायता मिलती रही परन्तु सुख दुःख का जोड़ा सदैव एक दूसरे के आगे पीछे रहता है। मिलन और करण का आनन्द-सम्मिलन समाप्त हुआ। दैवात् एक दिन करण रोगग्रस्त होकर पंचत्व को प्राप्त हुए।

मिलनदेवी को जो शोक इस समय हुआ वह पाठक अच्छी तरह समझ सकते हैं। पति के जीवन से ही पत्नी का सौभाग्य रहता है। सुहाग मिट जाते ही स्त्री के प्राण भी क्यों नहीं निकल जाते? जगदीश! तेरा यह कैसा विचार है! भला प्राणेश्वर के बिना प्राण कैसा! पक्षीके बिना पिंजड़ा कैसा! परन्तु जैसे बुद्धिमान् सब बातों को सोच समझ कर धैर्य्य धारण करते हैं इसी प्रकार मिलन ने भी बहुत शोक करके अन्त में धैर्य्य ही की शरण ली। परन्तु अब राजकार्य्य संभालने की चिन्ता उपस्थित हुई। जिस चिन्ता से अच्छे अच्छों का हृदय-रक्त सूख जाता है, जो चिन्ता सजीव आदमी को मुर्दा बना देती है, वही चिन्ता आज मिलनदेवी के हृदय में स्थित हुई।

परन्तु मिलनदेवी के गुणों की और बुद्धि की प्रशंसा करना गुलाब के फूल पर गुलाबी रंग चढ़ाने के समान है। मिलनदेवी ने अपने राज्य के पुराने और विश्वस्त कर्मचारियों के द्वारा राज्य का ऐसा सुप्रबन्ध किया जिस से उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। मिलनदेवी ने राज्यकार्य्य में अपनी अपूर्व प्रतिभा प्रकट की। इन सब बातों में फंस कर भी वह अपने पुत्र की शिक्षा दीक्षा को नहीं भूली। वह निरन्तर बालक सिद्धराज को शिक्षा देती रही। माता की गोद भी एक पाठशाला ही है। इस शाला के प्राप्त हुए उपदेश मनुष्य जन्म भर नहीं भूलता। मिलनदेवी अपने पुत्र का पोषण और शिक्षण बड़े प्यार से करती थी परन्तु वह लाड़ चाव ऐसा न था जैसा आज कल की बहुधा मूर्ख स्त्रियों का होता है। पढ़ने के समय वह मिथ्या मोह नहीं करती थी। मिलनदेवी की शिक्षा ने सिद्धराज को ऐसा चतुर और सुयोग्य बना दिया कि जो भविष्यत् में पाटन के सिंहासन पर विराज कर भली प्रकार राज्य-कार्य्य चला सका। अपनी शिक्षा समाप्त करके सिद्धराज पाटन के राज्य-सिंहासन पर बैठा।

सिद्धराज ने अपनी माता की संरक्षकता में ऐसा अच्छा राज्य प्रबन्ध किया कि सारी प्रजा उसे अपना पिता तुल्य समझने लगी। जब सिद्धराज की अवस्था १५ वर्ष की हुई तो मिलनदेवी उसे लेकर राज्य का दौरा करने निकली। नगर २ और ग्राम २ फिर कर उसने अपने पुत्र को राज्य की असली दशा दिखलाई। जहां कहीं प्रजा ने कुछ प्रार्थना की उसकी प्रार्थना सुन कर [illegible]

किया। दुष्ट व अन्यायी कर्म्मचारियों को उसने दण्ड दिया। और अच्छा काम करने वालों ने पुरस्कार पाया। दौरे में जहां कहीं वे गये यदि वहां के लोगों को किसी प्रकार का कष्ट देखा तो उसके निवारण की यथाशक्ति चेष्टा की। मिलनदेवी ने अपने राज्य में अनेक तालाव कुए बनवा कर लोगों और पशु पक्षी आदि के लिये बड़ा सुख कर दिया। वह राज्य के कागज़ात स्वयं देखती और समझती थी। यों हीं दौरे से प्रजा की स्थिति जानती हुई और सिद्धराज को सब बातें समझाती हुई मिलनदेवी कई मास में अपनी राजधानी में पहुंची।

मिलनदेवी और सिद्धराज के राज्य में प्रजा बड़ी सन्तुष्ट थी। मिलनदेवी समझती थी "जासु राज्य में प्रजा दुखारी, सो नृप होय नरक अधिकारी'। एक वार धोलका ग्राम में मिलनदेवी ने एक बहुत बड़ा तालाव बनवाने का विचार किया। उस तालाव के बनवाने में एक वेश्या का घर आ गया था। वेश्या ने अपने मकान को देना स्वीकार नहीं किया। उसको चौगुना मुआवज़ा दिया जाने लगा तो भी उसने मकान नहीं दिया। इस पर कर्म्मचारियों की राय बलपूर्वक छीन लेने की हुई किन्तु न्यायशीला मिलनदेवी ने ऐसा न किया और उतना भाग तालाब में कम कर दिया। यह उसके न्याय का एक नमूना है। अपने जीवन भर में मिलनदेवी ने कितनी ही पाठशाला और धर्म्मशाला बनवाईं तथा अन्य २ पुण्य कार्य्य किये थे। परोपकार और प्रजा-पालन में अपना जीवन व्यतीत करती हुई और प्रजा से आशीर्वाद ग्रहण करती हुई मिलनदेवी इस संसार यात्रा को समाप्त कर

देवलोक को पधारी। मिलनदेवी ने अपनी विद्या योग्यता से कैसे २ कार्य किये यह बात हमारे पाठकों और पाठिकाओं के ध्यान देने योग्य है। स्त्रियां शिक्षा द्वारा ही गुणवती बन सकती हैं।

कर्मदेवी, कमलावती और कर्णवती।

सन् १५६७ ई० में बादशाह अकबर ने जिस समय चित्तौड़ पर चढ़ाई की तो स्वतन्त्रताप्रिय राजपूत वीरों ने स्वदेश की स्वाधीनता-रक्षा के लिये विशेष वीरता पूर्वक युद्ध किया और प्राणों का मोह छोड़ कर रणभूमि में प्राण विसर्ज्जन करने लगे। राजपूत-कुल-गौरव जयमल्ल शत्रुओं के हाथ से मारेगये तो १६ वर्ष का नवयुवक फत्ता असीम उत्साह से शत्रुओं के सन्मुख युद्ध करने के लिये समस्त राजपूत सेना का अधिनायक बन कर युद्ध के लिये कटिबद्ध हुआ। इसी समय चित्तौड़ की ३ वीरांगनाएं स्वदेश के लिये प्राण अर्पण करने को उद्यत हुईं। तीनों ने कवच धारण कर और शस्त्रास्त्र ले कर मुगल सेना की गति रोकने का यत्न किया। जिस समय फत्ता युद्ध में जाने के लिये अपनी माता कर्म्मदेवी से आज्ञा लेने आया तो उसकी माता ने सहर्ष युद्ध में जाने के लिये आज्ञा दी और युद्ध में साहस, पराक्रम और वीरता दिखा कर अपने सुविख्यात पूर्वजों के यश में धब्बा न लगने देने का उपदेश किया। पीछे से अपनी प्रियतमा कमलावती के पास गया तो उसने भी अपने पति को कर्त्तव्य-पालन का अनुरोध करते हुए अपने प्राणाधार पति को युद्ध के लिये

विदा किया। बहिन कर्णवती ने भी मातृभूमि की रक्षा के लिये अपने प्यारे भाई को उत्तेजित किया। अकबर की सेना दो भागों में विभाजित हो कर युद्ध कर रही थी। एक भाग की सेना अकबर की सेनाध्यक्षता में लड़ रही थी और दूसरी भाग की सेना एक अनुभवी सेनानायक की आधीनता में थी। इसी दूसरे सैनिक दल से फत्ता का घोर युद्ध हो रहा था और बादशाह अकबर दूसरी ओर से उस भाग की सेना की सहायता को जा रहा था कि अचानक एक तरफ़ से गोलियों की वृष्टि होने लगी और मुग़ल सैनिक मर मर कर भूमि पर गिरने लगे और इसलिये फत्ता की तरफ़ फ़ौज जाने से रुक गई। अकबरशाह बड़े विस्मय से जिधर से गोली आतीं थीं देखने लगा तो ज्ञात हुआ कि ३ वीरांगना पहाड़ की चोटी पर एक पेड़ की ओट से गोली चला रहीं हैं। पाठक! समझे ये तीनों कौन थीं? इनमें से एक फत्ता की माता, दूसरी पत्नी और तीसरी बहिन थी। जब फत्ता को युद्ध के लिये भेज चुकीं तो माता कर्णवती ने पुत्रवधू कमलावती से कहा बेटी अब चित्तौड़ बचता दृष्टि नहीं आता इसलिये आओ हम तीनों भी युद्ध में चल कर फत्ता का युद्ध में साथ दें और सच्ची क्षत्राणियों की भांति युद्ध में पराक्रम दिखला कर स्वर्गलोक प्राप्त करें। यह विचार स्थिर कर तीनों युद्धार्थ सन्नद्ध हुईं। तीनों शस्त्र चलाने में कुशल थीं इसलिये उन्हों ने गोली चलाने में बड़ी चतुरता और पराक्रम दिखलाया और अकबर की बहुत सेना का नाश किया। अकबर ने जब इस प्रकार ३ अबलाओं से अपनी सेना का विध्वंस होता हुआ देखा तो उसे बड़ा

रोष हुआ। १६ वर्ष का नवयुवा कत्ता अकेला युद्ध करे यह कर्णवती जैसी वीरमाता कैसे देख सकती थी, तैसे ही प्राणाधार पति अकेला मुगलों के हथियारों से घायल होकर जन्मभूमि की रक्षा में प्राण त्याग करे यह कमलावती जैसी पतिव्रता नारी कैसे सहन कर सकती थी? अपना स्नेहनिधि भाई क्षात्रधर्म के पालन में देह त्याग करे कर्मदेवी जैसी सहोदरा बहिन कैसे देख सकती थी इसलिये रण को विदा करते ही मुगल सैन्य का मार्ग रोकने के लिये वहां चली आई और कुछ काल तक शस्त्र चलाने में अपूर्व पराक्रम दिखलाया। अकबर वीर पुरुष था इसलिये आरम्भ में क्षुब्ध होने पर भी पीछे वीर महिलाओं के वीरत्व को देख कर स्तम्भित और मोहित होगया। उसने तीनों को जीवित पकड़ कर लाने वाले को इनाम देने को कहा परन्तु सब युद्ध में ज्ञानशून्य होकर लड़ रहे थे। किसी ने उसकी बात पर विशेष ध्यान न दिया। इसी बीच में कर्णवती के आकर गोली लगी और वह कोमल पुष्प-वृन्त की नाईं गिर पड़ी। उसकी माता कर्णवती ने यह देखा परन्तु घबड़ाई नहीं, स्थिर चित्त से युद्ध-कर्म्म में व्यस्त रही। थोड़ी देर पीछे एक गोली कमलावती के बाऐं हाथ में आकर लगी और बन्दूक चलाने को असमर्थ हो गई और थोड़ी देर तक स्थिर भाव से शत्रुओं को देखती रह कर उस भयंकर आघात से बेसुध होकर गिर पड़ी। पीछे कर्म्मदेवी की भी यही दशा हुई। जब फत्ता अकबर की सेना को पहिले दिन के युद्ध में पराजित करके गिरिशिखर के पास आया तो कमलावती और कर्णदेवी की वाणी बन्द हो [illegible]
[illegible] मलावती के शरीर पर हाथ

रक्खा तो कमलावती ने नेत्र खोल कर प्रियतम को एक वार देखा और सानन्द देह त्याग की । कर्म्मदेवी इस समय अन्तिम श्वास ले रही थी और उसे चेत न था इसलिये फत्ता के उठाते ही उसका प्राण पखेरू उड़ गया । कर्णवती तो पहिले ही इस लोक से सम्बन्ध छोड़ स्वर्ग को चली गई थी । अब फत्ता को इसके सिवाय कोई काम न रहा कि शत्रुदल से घोर युद्ध करते हुए जन्मभूमि के लिये अपना प्राण देवे । अहा ! मेवाड़ के इन वीर पुरुषों और स्त्रियों की सम्यक् प्रशंसा कौन कर सकता है !

बीकानेर के राजा पृथ्वीराज की रानी ।

धीरे २ अकबर बादशाह का राज्याधिकार सम्पूर्ण हिन्दुस्थान में फैल गया । जिन शूरवीर पुरुषों ने दिल्लीश्वर अकबर की आधीनता स्वीकार न की थी उन्हों ने या उनके पुत्रादि ने भी अन्त में अकबर का आधिपत्य मान लिया । अब समस्त भारतवर्ष में अकबर की विजय वैजयन्ती फहरा रही थी । अकबर के बाहुबल से मंत्र-कौशल से सब ने अकबर को अपना अधिपति माना । प्रत्यक्ष में वह हिन्दू मुसलमानों के साथ एक सा व्यवहार करता था और मुसलमानों की भांति हिन्दुओं को बादशाहत में उच्च पद देता था । सब मतों का समान सम्मान करता था इसलिये हिन्दुओं की उस पर बहुत श्रद्धा बढ़ गई अतएव हिन्दू उस को 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरोवा' कह कर सम्मानित करते थे । अकबर ने समझ लिया था कि हिन्दुस्थान हिन्दुओं का है इसलिये विना इनसे मेल किये मुग़ल

बादशाहत दृढ़ नहीं हो सकती इसलिये उसके हृदय में चाहे जैसे भाव रहे हों परन्तु प्रत्यक्ष में वह हिन्दुओं के साथ नि-ष्पक्षता का परिचय देता रहा, उनकी धार्मिक रीति नीति के अनुसार व्यवहार करता रहा। बहुधा पोशाक भी हि-न्दुओं की सी पहना करता था। इन बातों से हिन्दू उसे को पूज्य दृष्टि से देखने लगे परन्तु जो कुछ वास्तव में था वह मरते समय प्रकट कर गया। उसने कहा कि मैं दिल से सदैव अपनी मज़हबी बातों का पाबन्द रहा हूं। मेरे मरने पर सब काम मुसलमानी मज़हब के मुताबिक हों। इससे मालूम होता है कि हिन्दू मत की बातों को मानना और उनके त्यौहारों में शामिल होना और हिन्दुओं का सा वेष रखना यह सब उसका ऊपरी ढोंग था। वह प्रत्यक्ष में जैसा लोगों को दीखता था वास्तव में वह वैसा न था और यह बात नीचे की घटना से भी विदित होती है।

मुसलमानी नये वर्ष के आरम्भ होने पर वह दिल्ली में एक मीना बाज़ार लगवाया करता था। इस में पुरुष नहीं जाने पाते थे। केवल कमनीया कामिनी ही क्रय वि-क्रय करने वाली होती थीं। बाज़ार में अपूर्व शोभा होती थी। सौन्दर्यवती ललनाएँ हंसी खुशी से बाज़ार में चीज़ें बेचा करती थीं। बाज़ार में बड़ी चहल पहल रहती थी। बादशाह की बेग़में तक इस बाज़ार में आती थीं और हंसी दिल्लगी के फव्वारे इधर उधर छोड़ती फिरा करती थीं। बादशाह के विशेष अनुरोध से दिल्ली में रहने वाले सब ही सरदारों की कुल-कामिनियां इस स्त्रियों के बाज़ार में आती थीं। निदान राजपूत रमणी भी आने लगीं। यह नौरोज़ या खुशरोज़ कहलाता था। इसी दिन एक बार एक वीरां-

गना सुन्दर वेशभूषा से सुशोभित इस बाज़ार में अपूर्व शिल्प द्रव्य देखने और लेने के लिये आई। जिस किसी दुकान पर जाकर यह कुलवती किसी वस्तु का मूल्य पूछती तो वेचने वालीं स्त्रियां हँस हँस के उत्तर देतीं। इस हँसी में यदि लज्जा और शीलता भी मिश्रित होती तो कुछ पर्वाह इस कुलबाला को न होती परन्तु निर्लज्जता से हास्य करते हुए देखकर इस वीरांगना के चित्त में इस बाज़ार की ओर से ग्लानि उत्पन्न हुई और वह स्वगृह को लौटने का विचार करने लगी। इसी समय एक विचित्र सी वड़ी बढ़िया जनानी पोशाक पहने एक साधारण सी स्त्री को साथ लिये आ पहुंची और प्रत्येक दुकान वाली से हँस २ कर किसी न किसी वस्तु का मूल्य पूछ कर और मुंहमांगे दाम दे २ कर खरीदने लगी।

पाठक! समझे यह विचित्र स्त्री कौन थी? यह अकबरशाह बादशाह थे। आज अकबरशाह का खुशरोज़ था इसलिये आप भी खुशी की तरंग में तैरते फिरते थे। इस बाज़ार में पुरुषों के आने की मनाही थी इसलिये बादशाह छद्मवेश में यहां आता था और लावण्यवती स्त्रियों के मनोहर रूप को वस्तु क्रय करने के मिस से देखता फिरता था। वस्तु बेचने वाली सुन्दरी भी बड़े २ आदमियों की पुत्रियां और स्त्रियां हीं होतीं थीं इसलिये अपूर्व कमनीय कान्ति से बाज़ार प्रकाशित होता था।

उपर्युक्त कुलांगना जब इस बाज़ार में आई तो स्थिर गम्भीर भाव से प्रत्येक वस्तु की शिल्प-चातुरी देख २ कर प्रसन्न हुई परन्तु किसी २ क्रय विक्रय करने वाली स्त्रियों की निर्लज्जता और सौजन्यहीनता की बातों से बड़ी

...क हुई । ...२ स्त्री तो उस समय ...लतार।हत
...स्य से मनोविनोद करने के सिवाय कुछ न करती थी।
...न उच्च कुलांगनाओं का बाज़ार में बाज़ारी औरतों का
...परस्पर व्यवहार देखकर यह वीर-बाला खिन्नचित्त हो
...र बाज़ार से निकलने लगी परन्तु बाहर निकलने की राह
...ड़ी कुटिल थी। युवती इस कुटिल मार्ग से धीरे २ जाने
...गी। परन्तु बाहर के निकलने बदले वह तो एक ऐसे स्थान
...आ गई जहां से झट बादशाह अकबर ने निकल कर उस
...ी राह रोकी। उस वीर-बाला ने जब अपने सन्मुख
अकबरशाह को देखा तो उस पवित्रस्वभावा कुलमहिला
...ो अपरिमित क्रोध आया। भारत के शक्तिशाली अधिपति
...ो देखकर वह किंचित् भयभीत न हुई परन्तु क्रोध से उसकी
...ाल आंख हो गई। उसने तत्काल अपने वस्त्रों में से कटार
निकाला और सतीत्व रक्षार्थ बादशाह की छाती पर रख
दिया। जब तक बादशाह से शपथ न ले ली कि किसी
...त्रिय कुलबाला के साथ फिर कभी ऐसा अत्याचार न करेगा
...ब तक उसकी छाती पर से कटार न हटाया। कदाचित्
कोई तर्क करें कि सम्पूर्ण हिन्दुस्तान का शक्ति-शाली
बादशाह जिसके सामने बड़े २ बलशाली राजा महाराजा
सिर झुकाते थे वह एक अबला के सामने क्यों ऐसा कायर
हो गया तो ऐसे मनुष्यों के संशय निवारणार्थ लिखते हैं कि
पापी दुराचारी पुरुष की आत्मा बड़ी निर्बल हो जाती
है। अपने पाप-कर्म करने के समय तो उस में इतनी
निर्बलता आ जाती है कि तुच्छाति तुच्छ से भी भयभीत
हो जाता है। और सती स्त्री का ऐसा तेज और प्रभाव
होता है कि उस के सन्मुख किसी की क्या शक्ति कि

आंख भी मिलावे अतएव तेजस्विनी क्षत्रिय-महिला के वीरत्व के सन्मुख अकबर शाह को भयभीत और व्याकुल होना पड़ा और बहुत सम्मान के साथ क्षमा प्रार्थना करके उस वीरांगना को विदा किया।

यह वीर नारी मेवाड़ भूमि के शक्तावत वंश की राजकुमारी और बीकानेर के प्रभावशाली राजा पृथ्वीराजा की रानी थी।

जगत्प्रसिद्ध बादशाह अकबर यद्यपि लोगों का बड़ा आदरणीय था। सुनियम से राज्य-शासन करता था, प्रजारंजन के बहुत काम करता था, न्याय और धर्म्म का विचार रखता था परन्तु इंद्रियलोलुपता से विषय-भोग का वशवर्त्ती हो कर अपने सुनाम में कलंक का ऐसा धब्बा लगाया कि कभी छुटने वाला नहीं है। जब अकबर से बादशाह में दुराचार के कारण स्थायी कलंक कालिमा लग गई तो साधारण पुरुषों की उनके दुराचार के कारण जो कुछ दुर्दशा हो थोड़ी है। बादशाह अकबर में यदि यह दुर्गुण न होता तो उस का नाम और चरित्र पूर्णतया निष्कलंक रहता। परन्तु मनुष्य अपनी कुवृत्ति से लाचार हो जाता है। कहा जाता है कि अपनी निन्दनीय चित्तवृत्ति के चरितार्थ करने को ही वह उपर्युक्त मीना बाज़ार लगवाता था।

पुरुष सिंह पृथ्वीराज की राजमहिला तुम धन्य हो! तुमने अपने वंशोचित्त गौरव की रक्षा के लिये जो वीरता प्रदर्शित की उस को हमारी लेखनी से प्रशंसा नहीं हो सकती। तुम्हारा पवित्रतामय जोवन, तुम्हारा पातिव्रत धर्म्म तुम्हारी सजातीय स्त्रियों के लिये अनुकरणीय औ

दरणीय है। तुम्हारे सच्चरित्र से तुम्हारे पितृवंश और
कुल की आज भी प्रशंसा हो रही है। तुम धन्य हो,
धन्य है तुम्हारी माता को जिसकी कोख से तुम
सती-शिरोमणि उत्पन्न हुई। स्त्री का सन्मान
त्व से ही है। जितने अपना अमूल्य सतीत्व नष्ट कर
उस ने अपना जन्म ही नष्ट कर दिया। धिक्कार है
त्व नष्ट करने वाली कुल-कलंकनियों को।

दो राज कुमारियाँ।

खलीफा वली के सेनापति मुहम्मद बिन क़ासिम ने
७१८ ई० के आरम्भ में भारत भूमि में आ कर ब्रह्मना-
द (सिंधु) के दाहिर राजा के राज्य पर आक्रमण
या। स्वदेश की रक्षा के लिये दाहिर राजा ने घोर
किया परन्तु किसी तरह अपने देश की रक्षा न
सका। राज्य धन के साथ २ अपना जीवन भी राजा
खोना पड़ा। विजयी मुहम्मद बिन क़ासिम को जीती
र लूटी हुई सामग्रियों के साथ २ क्षत्रिय राजा दाहिर
दो परम रूपवती कन्याएँ भी प्राप्त हुईं। परन्तु
र दोनों राजकुमारियों ने भी सेनापति के सर्व-
श का उपाय किया। ये दोनों राजकुमारी बग़दाद
गर में भेजी गईं। ख़लीफा इनके अनुपम रूप लावण्य
प्रशंसा सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ। उन सुन्दरियों के
थ पापकर्म करने की तृष्णा उसके हृदय में उत्पन्न हुई।
मोद-भवन में उन राजकुमारियों के लाने की आज्ञा दी।
ाज्ञा का तुरन्त पालन हुआ। पवित्र क्षत्रिय-कुल की

कमलिनी समान कोमलाङ्गा कामिनी कामोन्मत्त हाथी जैसे निर्दय यवन के सामने लाई गई। निःसहाय, निराश्रय अनाथिनी राजपुत्रीं पापी यवन की विलास-भोग्या होने के लिये लाई गई। इस समय पापक्षेत्र में पतित होने से उन की कौन रक्षा कर सकता था? सिंधुराज के पवित्र दाहिर कुल को इस घोर कलंक से कौन बचा सकता था? राजकुमारियों ने यवनराज से अपने पवित्रतम सतीत्व रक्षा करने का उपाय न देखा तो एक चातुरी का काम किया। जिस समय वे खलीफा के सामने लाई गई तो रोने लगीं और रोते २ कहने लगीं—"हमारे शरीर आपके छूने योग्य नहीं हैं, दुर्मति क़ासिम ने हमारा धर्म नाश किया है"' यह सुन कर खलीफा के तन में आग लग गई। उसने तुरन्त क़ासिम के लिये कठोर दण्ड की आज्ञा अपने हाथ से अपनी सेना को लिखी कि मुहम्मद बिन क़ासिम को ताज़ी बैल की खाल में जीता ही सींकर फौरन यहां को भेज दो। यथा सम्भव शीघ्र इस कठोर दण्डाज्ञा का पालन हुआ। निदान दुर्गन्धमय चमड़े में सिली उस की लहाश बग़दाद पहुंची। दोनों राजकुमारियों ने ख़लीफा को इस तरह क्रोधानल में डाल कर अपने पवित्र सतीत्व धर्म्म की रक्षा की तथा मुहम्मद बिन क़ासिम से अपने बाप के वध का बदला भी लिया। धन्य है राजकुमारियो तुम्हारे साहस को!

एक इतिहास में लिखा है कि जब मुहम्मद बिन क़ासिम की लहाश बग़दाद पहुंची और दोनों राजकुमारियों को दिखलाई गई तो वे हंसीं और कहने लगीं कि "रे मूर्ख! केवल हमारे कथन मात्र पर बिना जांच किये अपने ऐसे हितैषी को क्यों मरवा डाला? उसने तो हमारे गात

को छुआ तक भी न था। हमने तो ऐसे कौशल से अपने बाप के वध का बदला लिया है।" यह बात सुन कर खलीफा को बड़ा क्रोध आया और दोनों लड़कियों के हाथ कटवा कर दीवार में चुनवा दिया परन्तु मीर मुहम्मद मासूम ने लिखा है कि "घोड़े की दुम से बंधवा कर तमाम शहर में घसीटने की आज्ञा दी और फिर उनकी एहाशों को दजला नदी में फिकवा दिया।"

जो हो परन्तु इन वीर बालाओं के अप्रतिम साहस की प्रशंसा नहीं हो सकती। अपने प्राण दिये परन्तु अपने पवित्र क्षत्रिय-कुल में अपना सतीत्व नष्ट कराके कलंक न लगने दिया। इनके पवित्र जीवन का अनुकरण सब कुल-बालाओं को करना चाहिये।
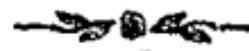
जवाहर बाई।

सन् १५३३ ई० में गुजरात के बादशाह बहादुर शाह ने प्रचण्ड सेना के साथ चित्तौड़ पर आक्रमण किया। इस समय कायर और विषयी राणा विक्रमादित्य चित्तौड़ की गद्दी पर था इसलिये सब को चिन्ता हुई कि चित्तौड़ का उद्धार कैसे होगा, सीसौदिया कुल के गौरव की रक्षा कैसे होगी, किस रीति से राजपूत वीर स्वदेश-रक्षा कर सकेंगे। ऐसी चिन्ताओं से सब लोग चिन्तित थे कि देवलिया प्रतापगढ़ के रावल बाघ जी अपनी राजधानी से आ कर राणा के स्थान में मरने मारने को तय्यार हुए। उनकी अधीनता में सब राजपूत वीरता के साथ युद्ध करने के लिये सन्नद्ध हो गये। मुसलमान सेना राजपूतों की अपेक्षा बहुत

अधिक थी परन्तु फिर भी राजपूत विचलित न हुए। सब ने शपथ खाई कि या तो पूर्ण पराक्रम से लड़ कर विजय प्राप्त करेंगे या युद्ध में प्राण देकर वीर गति प्राप्त करेंगे। युद्ध के आरम्भ होते ही बहादुर शाह ने पहले अपनी तोपों से ही काम लिया परन्तु राजपूत तोपों की गर्ज्जन सुन कर द्विगुण उत्साह से उत्साहित होकर जिधर से गोला आता था उधर बड़ी फुर्ती से अपने तीक्ष्ण बाण चलाने लगे। उस समय तोपों से न तो बहुत दूर की मार ही होती थी और न बहुत जल्द २ चलती थीं इसलिये तोपों के साथ २ बन्दूकें भी मुसलमान सेना को चलानी पड़ीं। बन्दूकों के धुआं से रण-स्थल अन्धकाराच्छादित हो गया। दोनों पक्ष के बहुत सैनिक मारे गये परन्तु बहादुर शाह किसी रीति से चित्तौड़ पर अधिकार कर न सका। अन्त में बहादुर शाह ने एक ओर के क़िले की दीवार बारूद की सुरंग से उड़ाने का विचार किया और जो स्थल सुरंग से उड़ाया गया वहां हाड़ा वीर अर्जुन राव अपने ५०० योद्धाओं के साथ युद्ध कर रहे थे इसलिये अपने समस्त सैनिकों सहित मारे गये। शत्रु दल ने इस समय भग्न दुर्ग के भीतर घुसने के लिये धावा किया परन्तु चित्तौड़ अभी वीरशून्य न था। वीरवर चूंडावत राव दुर्गादास, उनके मुख्य सुभट सत्ता जी और दूदा जी तथा कितने एक सामन्त और सैनिक शत्रुओं के सामने अचल और अटल रूप से डटे रहे। देह में प्राण रहते कोई उनको हटा न सके। भीम विक्रम से वे मुसलमानों के धावे को हटाते रहे परन्तु थोड़े से राजपूत कब तक प्रचण्ड यवन सैन्य का प्रतिरोध कर सकते थे? वीरत्व के साथ युद्ध करते रहने के पीछे जब वे मरते २ कम रह गये तो रणो-

नाश मुसलमान भली भली कहते हुए क़िले में घुसने लगे। अकस्मात् फिर उनकी गति का अवरोध हुआ। सब ने चकित होकर देखा कि योद्धावेश में एक रमणी प्रचण्ड रणतुरंग पर चढ़ी हुई और हाथ में भाला लिये हुए खड़ी हुई है। यह वीरमहिला राजमाता जवाहर बाई थी। जवाहर बाई ने जब हाड़ाओं के मारे जाने का समाचार सुना तो उनको विचार हुआ कि अब यदि कहीं राजपूत निराश और साहसहीन होगये तो चित्तौड़ का बचना कठिन है इसलिये कवच धारण कर शस्त्र ले स्वयं वहां आ पहुंचीं जहां घमसान युद्ध हो रहा था। और योद्धाओं को युद्ध के लिये उत्साहित करती हुई आप भी लड़ने लगीं। रानी की वीरता को देख कर राजपूतों ने ऐसा पराक्रम दिखाया कि मुसलमानों को पीछे हटना पड़ा। यह वीर नारी सब राजपूतों के आगे रन्ध्र-पथ रोके खड़ी थी। जो यवन आगे को बढ़ता था वही इसके भाले से मारा जाता था। भाले के दारुण प्रहार से बहुत से यवन सैनिक मारे गये। कई २ यवन वीर एक साथ आने लगे परन्तु फिर भी वीर क्षत्राणी निरुत्साहित न हुईं। असीम साहस से रणोन्मत्त मुसलमानों से युद्ध करती रहीं। दूर से गजारूढ़ बहादुर शाह विस्मयविस्फारित-नयनों से देख रहा था। राजमहिषी का अद्भुत रणकौशल देख कर वीरत्वाभिमानी यवन वीर आश्चर्यित हुआ। वीर महिषी जवाहर बाई जहां यवन दल की प्रबलता देखतीं वहां हीं तीव्र वेग से अपने तुरंग को ले जा कर युद्ध करने लगतीं थीं। जब कि राजपूतों और मुसलमानों में घोर युद्ध हो रहा था धड़ सीस गिर २ कर लुढ़क रहे थे, शव के ऊपर शव गिर रहे थे तो उस समय में रानी के शरीर

में तोप का गोला आकर लगा और वह जगत में अपनी वीरता का अपूर्व दृष्टान्त और आत्मोत्सर्ग का ज्वलन्त उदाहरण छोड़ कर स्वर्गलोक को सिधार गईं। मेवाड़ को ऐसी २ शूर वीर और सती पतिव्रता रानियों के कारण मेवाड़ को और भी अधिक यश प्राप्त हुआ है।

प्रभावती

यह सती स्त्री गन्नौर के राजा की रानी थी। रूप लावण्य और गुण में अत्यन्त प्रसिद्ध थी। इसकी सुन्दरता पर मोहित होकर एक यवन सरदार ने गन्नौर पर चढ़ाई की। रानी ने बड़ी वीरता के साथ सामना किया। जब बहुत से वीर सैनिक मारे गये और सेना थोड़ी रह गई तो क़िला यवनों के हाथ में चला गया। रानी इस पर भी नहीं घबड़ाई और बराबर लड़ती रही। जब किसी रीति से बचने का उपाय न रहा तो अपने नर्वदा नदी के किनारे के क़िले में चली गई परन्तु यवन सेना उसका बराबर पीछा किये गई। बड़ी कठिनाई से क़िले में घुस कर उसने क़िले का फाटक बन्द करा दिया। राजपूत यहां भी बहुत से लड़कर मारे गये। यवन बादशाह ने रानी के पास पत्र भेजा जिस में लिखा था "सुन्दरि! मुझे तुम्हारे राज्य की इच्छा नहीं है। मैं तुम्हारा राज्य तुमको लौटाता हूं किन्तु और भी तुमको देता हूं। तुम मेरे साथ विवाह कर लो। विवाह होने पर मैं तुम्हारा दास होकर रहूंगा।" रानी को यह पत्र पढ़ कर बड़ा क्रोध आया परन्तु क्रोध करने से क्या हो सकता था इसलिये उसने सोच विचार

कर उत्तर लिखा कि " मुझ को भी विवाह करना स्वीकार है किन्तु अभी आप के लिये विवाह योग्य पोशाक तैयार नहीं है। कल तैयार होजाने पर शादी होगी।" सरदार यह उत्तर सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। दूसरे दिन रानी ने सरदार के पास एक उत्तम पोशाक भेज कर कहलाया कि इसको पहन कर विवाह के लिये शीघ्र आओ। रानी की भेजी हुई पोशाक को पहन कर सरदार बड़ी खुशी के साथ शादी की उमङ्ग में रानी के महल में आया। रानी का दिव्य रूप देख कर कहने लगा,—"अहा! यह तो स्वर्गीय अप्सरा है। इसके सहवास में तो जीवन बड़े आनन्द से व्यतीत होगा।" ऐसी २ बातें विचार कर जो आनन्द तरङ्ग उस समय उसके हृदय में उठ रहीं थीं उनका कुछ ठिकाना न था परन्तु शीघ्र ही यह आनन्द तरङ्ग शोकसागर में परिवर्तित हो गई। तत्काल असह्य पीड़ा उसके शरीर में होने लगी। बादशाह दर्द से व्याकुल हो गया, गर्मी से मूर्च्छागत होने लगा, और आंखों तले अंधेरा छा गया। शरीर की पीड़ा से छटपटा कर कहने लगा—"अरर मैं मरा" रानी ने उसका यह वचन सुनकर कहा—"आपकी आयु अभी पूरी हुआ चाहती है। आप के शुभ विवाह से पहले ही आप की मृत्यु आज होने को है। तुम्हारी अपवित्र इच्छा से अपने सतीत्व रूप रत्न की रक्षा के लिये इसके सिवाय और कोई उपाय न था कि मैं तुम्हारी मृत्यु के लिये विष से रंगी हुई पोशाक भेजूं।" इतना कह कर सती ने ईश्वर से कुछ प्रार्थना की और क़िले पर से नर्वदा नदी में कूद कर अपने प्राण त्याग किये। बादशाह भी वहीं तड़फ २ कर तत्काल मर गया। इस रीति से सती प्रभावती ने

अपने सतीत्व धर्म्म और कुल गौरव की रक्षा की । धन्य है
ऐसी सतियों को कि जिन्होंने तरह २ की आपत्ति सह कर और
प्राण देकर अपने सतीत्व धन की रक्षा की जिससे आज तक
उनके नाम भारत के इतिहास में प्रसिद्ध हैं ।

रानी कोटा ।

कश्मीर के अन्तिम हिन्दू राजा श्री रिंछण* की मृत्यु के
पीछे उसकी रानी कोटा गद्दी पर बैठी परन्तु रानी कोटा
के साथ उसके परिपालित दास शाहमीर ने विश्वासघात किया
और छल बल से अपने को राजा बनाया । रानी कोटा को
विवाह करने के लिये बहुत तंग किया । वह अपने सतीत्व
रक्षा के लिये छिप कर भागी परन्तु पकड़ी आई । अब व्याह
की तय्यारी होने लगी । जब व्याह होने के लिये लाई गई
तो साथ में वह एक कटार छिपा कर लाई । ठीक विवाह-समय
कटार पेट में मार कर आत्महत्या की । मरते समय कहा ले
कृतघ्न विश्वासघातक ! जिस शरीर को तू चाहता है, वह
तेरे सन्मुख है । हिन्दुओं का राज्य कश्मीर में इसीके साथ
समाप्त हुआ ।

कलवती ।

यह मध्य भारत के एक छोटे से राज्य के अधीश्वर राजा
करणसिंह की रानी थी । दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने

* ट्रायर के मत से राजा का नाम उदयदेव है, वंश का नाम भोट

एक बार राजा करणसिंह के राज्य पर चढ़ाई की । राजा करणसिंह का राज्य बड़ा न था इसलिये बादशाही सेना के समान उनके पास अधिक सेना भी न थी परन्तु फिर भी वह अपने क्षात्र धर्म्मानुकूल शक्तिशाली बादशाह से लड़ने को उद्यत होगये । क्षत्रिय वीर इससे अधिक निन्दा और पाप की बात अपने लिये नहीं समझते रहे हैं कि शत्रु से भयभीत होकर युद्ध से मुख मोड़ें फिर राजा करणसिंह अलाउद्दीन की प्रबल सेना के आक्रमण करने पर भी अपने कर्त्तव्य से पराङ्मुख कैसे हो सकते थे ? निदान वे झटपट युद्ध की तय्यारी कर स्वराज्य-रक्षार्थ रणभूमि में जाने को उद्यत होगये । अपने प्राणतुल्य पति को युद्धार्थ सन्नद्ध देख रानी कलावती भी अस्त्र शस्त्र धारण कर पुरुष वेष में घोड़े पर चढ़ कर अपने पति के साथ चलीं । रणक्षेत्र में पहुंचने पर युद्ध आरम्भ हुआ । धीरे २ युद्ध की भीषणता बढ़ने लगी । कुछ समय तक दोनों ओर के योद्धा बड़ी वीरता से लड़ते रहे। राजपूत योद्धा यह देख कर कि हमारी संख्या बहुत कम है बड़े पराक्रम से प्राणों का मोह छोड़ कर युद्ध करने लगे। राजपूत वीर असाधारण साहस और भीम वेग से मार काट करते हुए मुसलमान सेना को ध्वंस करने लगे । जिस समय घोर युद्ध हो रहा था तो कलावती बड़ी वीरता से पति की सहायता कर रहीं थीं । जिधर युद्ध में राजा करणसिंह लड़ रहे थे उधर ही यह भी शत्रुसेना से लड़ती भी जातीं थीं और पति की प्राण-रक्षा का भी ध्यान रखतीं थीं । जिस समय राजा युद्ध में व्यस्त थे तो शत्रुसेना के एक सिपाही ने दूसरे योद्धा से लड़ते हुए देखकर बाईं ओर से उन पर खड्ग प्रहार करना ही चाहा — कि रानी ने झट घोड़े को बढ़ा कर उस सिपाही का सिर

अपनी कृपाण से काट कर धरती पर गिरा दिया परन्तु कुछ देर पीछे राजा के विषम अस्त्राघात लगा। राजा की ऐसी अवस्था देखकर रानी बड़े रोष से शत्रुदल से लड़ने लगीं। रानी का पराक्रम देख कर राजपूत योद्धा भी अपूर्व विक्रम से लड़ने लगे। निदान रानी और राजपूतों की वीरता के सन्मुख यवन-सेना न ठहर सकी, युद्धभूमि छोड़कर भाग उठी। रानी कलावती अपने पति को लेकर राजधानी में लौटीं, चतुर वैद्य बुला २ कर अपने प्राणपति की चिकित्सा कराने लगी। वैद्यों ने राजा के घाव की बहुत कुछ दवा की परन्तु जब किसी तरह वह घाव अच्छा न हुआ तो उन्हों ने रानी से कहा कि यह घाव विष से बुझाए हुए अस्त्र का है। यदि मुख से चूसा जाय तो राजा अच्छे हो जायँगे किन्तु चूस-ने वाला मर जायगा। इसके सिवाय अब किसी भांति राजा का घाव अच्छा नहीं हो सकता। रानी ने यह सुन कर विचार किया कि सबको अपने २ प्राण प्यारे हैं। दूसरा कौन इस घाव को चूस सकता है इसलिये मुझे ही यह उपाय राजा की आरोग्यता के लिये करना चाहिये। यह विचार कर जब राजा सोये हुए थे रानी ने उनके घाव को चूसा और चूसने पर उसके विषाक्त प्रभाव से मर गईं। राजा की जब निद्रा भंग हुई और उन्हों ने यह समाचार सुना तो यह कह कर कि "हा! जिस प्राण-प्रिय रानी ने मेरी प्राण रक्षा के लिये अपने प्राण दिये क्या मैं उसके बिना जीवित रह सकता हूं" अपने हृदय में कटार मार कर अपना प्राण दिया। धन्य है ऐसी पत्नी व पति को जिन्हों ने कि एक दूसरे के लिये अपने प्राणों का मोह न किया। जहां ऐसे दम्पती हों वहां ही गृहस्थ का सच्चा सुख प्राप्त होता है।